नई दिल्ली
रविवार, 23 अगस्त, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-44 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

# संडे नवजीवन

*Freedom is in Peril. Defend it with all your might* — Jawaharlal Nehru




अपने स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं के लिए बच्चों का क्लास छोड़कर सरकारी दफ्तरों पर दस्तक देना बन रहा जन आंदोलन 3

गलत गिनती का महाअभियान 4

भारत के सामने 'हसीना संकट' 6

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

# इसराइल के न खत्म होने वाले युद्धों के लिए भारत में बने हथियार

फोटो: गेट्टी इमेजेज

मोदी और नेतन्याहू के रिश्ते हथियारों के व्यापार की व्यावहारिक जरूरतों से कहीं आगे के हैं। भारत की पीएलआर सिस्टम्स द्वारा बनाई गई मशीन गन का इस्तेमाल करते इसराइली सैनिक

अशोक स्वैन

एमनेस्टी इंटरनेशनल की नई जांच रिपोर्ट ने गाजा नरसंहार में भारत सरकार की साझीदारी से पर्दा उठा दिया है। 'मेड इन इंडियाः द सप्लाई ऑफ वीपन्स एंड एम्युनिशन टू इसराइल' शीर्षक वाली इस रिपोर्ट में पुख्ता सबूत पेश किए गए हैं। इसके मुताबिक, 7 अक्तूबर 2023 से 30 नवंबर 2025 के बीच भारत ने इसराइल को हथियारों, गोला-बारूद और सैन्य कलपुर्जों की 2,596 खेपें भेजीं। इन आपूर्तियों ने उस युद्ध तंत्र को मजबूती दी जिसने गाजा को मलबे में तब्दील कर दिया, पश्चिमी तट में बस्तियों के कब्जे को और गहरा किया और इसराइल को लेबनान, यमन और ईरान तक जंग फैलाने में मदद की।

एमनेस्टी ने भारतीय कंपनियों द्वारा भेजे गए सैन्य सामान की पूरी सूची दी है। इनमें मशीन गन के पुर्जे, तोप के गोले, 'स्काईस्ट्राइकर' आत्मघाती ड्रोन के वॉरहेड्स और सैन्य वाहनों के कलपुर्जे शामिल हैं। इन आपूर्तिकर्ताओं में निजी कंपनियों के साथ-साथ सरकारी उपक्रम भी शामिल हैं-यानी मोदी सरकार अब यह दावा करके अपना पल्ला नहीं झाड़ सकती कि ये सौदे केवल निजी कंपनियों ने किए थे।

इन निर्यातों में शामिल भारतीय कंपनियों में इंडो-एमआईएम, कल्याणी स्ट्रैटेजिक सिस्टम्स और अडानी समूह की अल्फा एल्सेक और पीएलआर सिस्टम्स जैसी निजी कंपनियों के अलावा म्यूनिशन्स इंडिया और एडवांस्ड वीपन्स एंड इक्विपमेंट इंडिया जैसे सार्वजनिक उपक्रम भी शामिल हैं। रिपोर्ट के अनुसार, म्यूनिशन्स इंडिया ने एलबिट सिस्टम्स को 1,000 उच्च-तीव्रता वाले विस्फोटक गोले भेजे। एडवांस्ड वीपन्स एंड इक्विपमेंट इंडिया ने फरवरी 2024 में 120 मोर्टार लॉन्चरों की आपूर्ति की। इंडिया ऑप्टेल ने एलबिट सिस्टम्स और राफेल एडवांस्ड डिफेंस सिस्टम्स (दोनों इसराइल की सरकारी रक्षा कंपनियां) की एक संयुक्त उद्यम फर्म को सेंसर निर्यात किए।

एमनेस्टी के इन खुलासों ने इसराइल के युद्धक गतिविधियों में भारत की भागीदारी को लेकर मोदी सरकार द्वारा ओढ़े गए अस्पष्ट रुख को ध्वस्त कर दिया है। आप एक तरफ संघर्षविराम के पक्ष में वोट डालने और स्वतंत्र फलस्तीन राष्ट्र का समर्थन करने का दिखावा करते हैं और दूसरी तरफ उस मुल्क को हथियार मुहैया कराते हैं जो फलस्तीनियों का वजूद ही मिटाने पर तुला है! अप्रैल 2024 में भारत संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के उस प्रस्ताव पर मतदान से गैरहाजिर रहा, जिसमें इसराइल पर हथियार प्रतिबंध लगाने की मांग की गई थी। उस वक्त यह अनुपस्थिति कूटनीतिक सावधानी जैसी लगी थी, लेकिन अब यह साफ हो गया है कि भारत का समान दूरी वाला रुख महज फरेब था, क्योंकि भारत परदे के पीछे इसराइल की युद्ध मशीनरी को खाद-पानी दे रहा था।

जनवरी 2024 में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने कहा था कि गाजा के फलस्तीनियों को नरसंहार संबंधी हरकतों से सुरक्षा पाने का अधिकार है। अदालत ने उनकी सुरक्षा के लिए तत्काल कदम उठाने का आदेश दिया था। इसके बाद मार्च और मई में भी अदालत ने सख्त आदेश जारी किए। अप्रैल 2024 में 'निकारागुआ बनाम जर्मनी' मामले की सुनवाई करते हुए अदालत ने सभी देशों को याद दिलाया था कि युद्धरत देशों को हथियार भेजते वक्त उनके क्या कानूनी कर्तव्य हैं। देशों को यह सुनिश्चित करना होगा कि उनके हथियारों का इस्तेमाल नरसंहार संधि (जेनोसाइड कन्वेंशन) या जिनेवा कन्वेंशन को तोड़ने के लिए न हो। जून 2024 में संयुक्त राष्ट्र के स्वतंत्र विशेषज्ञों ने चेतावनी दी थी कि हथियार आपूर्तिकर्ता भी गंभीर अपराधों (जिनमें संभावित रूप से नरसंहार शामिल है) की जिम्मेदारी के भागीदार बन सकते हैं। कानूनी सवाल यह नहीं है कि जांचकर्ता गाजा के मलबे में बने हर गड्ढे का मिलान भारत से भेजे गए तोप के गोले से कर पाते हैं या नहीं। किसी तबाह हुए घर के नीचे मिले हथियार पर निर्माता कंपनी का नाम न होना सरकार के गुनाह को कम नहीं करता। असली सवाल कहीं अधिक सीधा हैः क्या भारत ने एक ऐसे सैन्य तंत्र को जानते-बूझते मदद दी, जब यह बिल्कुल साफ था कि इस मदद का इस्तेमाल युद्ध अपराधों के लिए किया जाएगा?

> संयुक्त राष्ट्र में इसराइल को लेकर भारत का समान दूरी बनाए रखने का रुख़ सावधानी नहीं थी, वह एक झूठ था

नरसंहार संधि सभी देशों पर नरसंहार रोकने की जिम्मेदारी डालती है; बाद में सिर्फ अफसोस जताना काफी नहीं होता। जिनेवा कन्वेंशन भी देशों को अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानूनों का सम्मान करने का पाबंद बनाता है। खुद भारत के रक्षा निर्यात नियम खरीदार की पृष्ठभूमि, हथियारों के तय इस्तेमाल, विदेश नीति के लक्ष्यों और अंतरराष्ट्रीय संधियों की पड़ताल को अनिवार्य बनाते हैं।

आजादी के बाद से फलस्तीन का समर्थन भारत की विदेश नीति का केन्द्रीय स्तंभ रहा था। भारत ने 1974 में फलस्तीन मुक्ति संगठन को फलस्तीनी जनता के अकेले वैध प्रतिनिधि के रूप में मान्यता दी थी। इसके बाद 1988 में फलस्तीन राष्ट्र को औपचारिक मान्यता दी गई। फलस्तीन के मामले में भारत का रिकॉर्ड भले ही पूरी तरह बेदाग न रहा हो, लेकिन हमारी कूटनीति की बुनियाद हमेशा औपनिवेशिक नियंत्रण और नस्लीय गैर-बराबरी के विरोध पर टिकी रही।

मोदी ने बहुसंख्यकवादी सत्ताओं का गठजोड़ खड़ा करने के लिए उस ऐतिहासिक कूटनीतिक रुख को तिलांजलि दे दी है। हिन्दुत्व और यहूदी जायोनी जातीय-राष्ट्रवाद की जड़ें भले अलग हों, लेकिन राजनीतिक रूप से वे एक ही बिंदु पर आकर मिलते हैं। दोनों जमीन को 'पवित्र' और 'विशिष्ट' मानते हैं। दोनों मुस्लिम नागरिकों को संदेह की नजर से देखते हैं। दोनों सैन्य ताकत की नुमाइश का जश्न मनाते हैं, और दोनों ही अक्सर असहमति को गद्दारी करार दे देते हैं।

इसलिए मोदी और नेतन्याहू का यह रिश्ता सिर्फ व्यावहारिक कूटनीतिक गठबंधन भर नहीं है। जायोनी राष्ट्र के संदिग्ध सभ्यतागत दावों और संघ के 'हिन्दू राष्ट्र' के सामाजिक ताने-बाने में कई समानताएं हैं। नस्लीय श्रेष्ठता का दावा और खुद को हमेशा पीड़ित दिखाने की ग्रंथि-दोनों में एक जैसी है। लिहाजा, यह साठगांठ हथियारों के व्यापार के व्यावहारिक नफे-नुकसान से कहीं आगे जाती है। व्यावहारिक स्तर पर भारत इसराइल को अपनी विनिर्माण क्षमता और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कूटनीतिक कवच भी मुहैया करा रहा है।

इसराइल के साथ भारत की यह नजदीकी एक भारी रणनीतिक कीमत वसूल रही है। इसराइल आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहले से कहीं अधिक अलग-थलग पड़ चुका है। वह खुद अमेरिका में भी जनसमर्थन खो रहा है-खासकर युवा अमेरिकियों के बीच, जिन्होंने बेबसी से इसराइल को उसकी नरसंहारी मुहिम चलाते देखा है। अंतरराष्ट्रीय कानूनों की धज्जियां उड़ाते हुए पूरी आबादी को भूखा मारना, बच्चों और गर्भवती महिलाओं को निशाना बनाना, मानवीय मदद रोकना और अवैध बस्तियों का विस्तार करना दुनिया के सामने है। अमेरिकी जनता एक के बाद एक सर्वेक्षणों में ट्रंप प्रशासन को आगाह कर रही है कि अमेरिकियों के रोजमर्रा के मुद्दों के बजाय ईरान के साथ उस थोपे गए युद्ध को प्राथमिकता देने की भारी राजनीतिक कीमत चुकानी होगी, जिसमें नेतन्याहू ने उसे घसीटा है।

इसराइल की गिरती साख और उसका अलगाव दुनिया भर में हो रहे विरोध प्रदर्शनों, प्रतिबंधों की मांगों, अदालतों में दर्ज होते मुकदमों और फलस्तीन के पक्ष में उमड़ते वैश्विक समर्थन में साफ देखा जा सकता है। नेतन्याहू के इसराइल से देश की तकदीर जोड़कर मोदी भारत की वैश्विक प्रतिष्ठा का कोई भला नहीं कर रहे हैं।

भारत ने न केवल ग्लोबल साउथ में साख गंवाई, बल्कि अब वह औपनिवेशिक दासता से मुक्ति की बात भी नैतिक बल के साथ नहीं कह सकता और न ही वैश्विक संस्थाओं में निष्पक्षता की मांग कर सकता है- जब तक कि वह फलस्तीन को नक्शे से मिटाने में इसराइल का हाथ बंटा रहा है। आप संप्रभुता की रक्षा और अंतरराष्ट्रीय कानूनों की दुहाई केवल अपनी सुविधानुसार नहीं दे सकते। एशिया और अफ्रीका के छोटे देश इस दोहरेपन को अच्छी तरह समझ रहे हैं। वे जान चुके हैं कि विदेश नीति में भारत की 'रणनीतिक स्वायत्तता' के दावों की जमीनी हकीकत क्या है।

क्या भारत अपनी वैश्विक प्रतिष्ठा को पहुंचे इस नुकसान की भरपाई कर सकता है? यह इस पर निर्भर करेगा कि क्या मौजूदा सरकार में इस ऐतिहासिक गिरावट को स्वीकार करने की इच्छाशक्ति और समझ है। अगर मोदी इसराइल के साथ भारत के 'महान संबंधों' की छाती पीटते रहे, तो ऐसा कभी नहीं हो पाएगा। अगर उनकी सरकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अछूत बन चुके देश के साथ हथियारों और जासूसी उपकरणों का व्यापार जारी रखती है, तो हालात नहीं सुधरेंगे।

आज यह सोचना भी असंभव लगता है कि सरकार अपना रास्ता बदलेगी और इसराइल के साथ हथियारों, गोला-बारूद, तकनीक व तकनीकी मदद के सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लेन-देन को रद्द करेगी; मौजूदा रक्षा निर्यात को निलंबित कर उनकी स्वतंत्र समीक्षा कराएगी; संसद को निर्यात मंजूरियों, खरीदारों, कंपनियों, कीमतों और हथियारों की डिलीवरी के बाद की जांच का ब्योरा देगी; या इस अनैतिक व्यापार में लगी भारतीय कंपनियां अपने मुनाफे के आगे मानवाधिकारों के हनन को तवज्जो देंगी।

इसकी संभावनाएं तो नहीं हैं, लेकिन भारत की बची-खुची साख बचाने के लिए इससे कम में काम भी नहीं चलने वाला। ■

*अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉनफ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं*

# मुंढे स्टाइलः कोई कितना भी बड़ा हो, बख्शा न जाए

## एक आईएएस अफसर जिसकी हर पोस्टिंग पर रसूखदार और ताकतवर परेशान होते हैं और जनता खुश

जयदीप हर्डीकर

51 वर्षीय तुकाराम मुंढे महाराष्ट्र के आईएएस अफसरों के बीच एक चर्चित नाम हैं। कहते हैं कि हर पोस्टिंग पर जब वह नई जिम्मेदारी संभालने जाते हैं, उनके एक हाथ में फाइल, दूसरे हाथ में ट्रांसफर ऑर्डर रहता है।

महाराष्ट्र एफडीए (फ़ूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन) दफ्तर में 25 मई 2026 को बतौर नए कमिश्नर आने से पहले ही उनकी खासी चर्चा थी। 21 साल के करियर में मुंढे की यह 25वीं पोस्टिंग है, जो ताकतवर नेताओं और बड़े कारोबारी घरानों से टकराने के उनके जज्बे और नियमों को सख्ती से लागू करने के उनके खास अंदाज का प्रमाण है। वह जी.आर. खैरनार और अरुण भाटिया जैसे पुराने दौर के उन ईमानदार-निडर अफसरों की याद दिलाते हैं, जो कानून के सख्त पालन और बिना भय या पक्षपात उसे लागू करने के लिए ख्यात थे।

एफडीए महत्वपूर्ण विभाग है, लेकिन इसके कर्मचारियों की शोहरत ढीले-ढाले काम के लिए ज्यादा है, लेकिन मुंढे के आते ही विभाग में जैसे नई जान सी आ गई। फूड इंस्पेक्टर अचानक जिम्मेदारी के प्रति सजग दिखे और नोटिस की अनदेखी करने वाले कारोबारी नियम उल्लंघन पर नफा-नुकसान की चिंता करने लगे। जल्द ही राज्यभर में छापेमारी शुरू हो गई और रेस्टोरेंट, डेयरी, खाद्य उत्पादक कंपनियां, गोदाम, गुटखा नेटवर्क, कॉस्मेटिक व्यापारी और दवा बनाने वाली कंपनियां इसके दायरे में आ गए।

जुलाई के आखिर तक विभाग ने 1,131 निरीक्षण, 49.6 करोड़ रुपये के सामान की जब्ती और 56 रेस्टोरेंट के लाइसेंस निलंबित करने की रिपोर्ट भी दे दी। बड़े क्लब भी नहीं बख्शे गए। पहले जैसा ही स्टाफ, वही टीम और लैब भी वही, लेकिन काम का तरीका बदल गया था। मुंढे कहते हैंः उन्होंने तो बस एसओपी लागू किए, लैब का कामकाज बेहतर बनाया और इंस्पेक्टरों को हौसला दिया।

एफडीए के दायरे में आने वाले ये संस्थान सड़क किनारे चलने वाली रसोई या ढाबे नहीं; यहां बड़ों-बड़ों की प्रतिष्ठा दांव पर हैः मसलन मुंबइया यादों का अहम हिस्सा रहे के. रुस्तम एंड कंपनी, शालीमार, नूर मोहम्मदी और 110 साल पुराना पारसी डेयरी फार्म। पुराने गांधीवादी संस्थानों की परंपरा से जुड़ी वर्धा की मशहूर डेयरी 'गोरस भंडार' या मुंबई की नामी-गिरामी हस्तियों के लिए मशहूर क्रिकेट क्लब ऑफ इंडिया की कैंटीन भी इससे बचे नहीं।

मुंढे का तरीका सीधा-सपाट हैः कोई भी संस्थान और उसकी प्रतिष्ठा अपवाद नहीं है। यहां प्रतिष्ठा छूट का लाइसेंस नहीं, आप चाहे आइसक्रीम बेच रहे हों, बिरयानी या विरासत से जुड़ी कोई चीज। विरासत की दावेदारी फंगस लगी दीवारों, असुरक्षित स्टोरेज, पेस्ट कंट्रोल में नाकामी या एक्सपायर स्टॉक को माफी नहीं दिलाती। शालीमार रेस्टोरेंट में लगातार 25 उल्लंघनों की रिपोर्ट से संदेश और मुखर हुआ- एफडीए महज चेतावनी देकर संतुष्ट नहीं होगा; वह प्रतिष्ठान बंदी के लिए भी तत्पर था।

जहां नियमों के पालन में ढिलाई आम हो, मुंढे का पहला सार्वजनिक बयान हमेशा की तरह संक्षिप्त लेकिन साफ थाः जनता के स्वास्थ्य से खेलने वालों पर "जरा भी नरमी नहीं"। एक मराठी न्यूज चैनल से बातचीत में उन्होंने कहा, "मैं बस कानून का पालन कर रहा हूं। हमें यही करना चाहिए।" लेकिन अधिकारियों का पूरी ईमानदारी से कानून का पालन करना अब इतना दुर्लभ है कि मुंढे जैसे किसी अफसर की बात आते ही सब हैरान रह जाते हैं।

रेस्तरां की रसोई खंगालने के बाद अभियान ने गुटखा कारोबार की ओर रुख किया। जून की शुरुआत में एफडीए ने अपने अफसरों को पुलिस के साथ मिलकर उन नेटवर्क के खिलाफ 'महाराष्ट्र कंट्रोल ऑफ ऑर्गनाइज्ड क्राइम एक्ट' (मकोका) लगाने को कहा, जो प्रतिबंधित गुटखा, तंबाकू और निकोटीन वाला पान मसाला बनाते-बेचते हैं। मुंढे का तर्क था कि अभियान के निशाने पर छोटे दुकानदार नहीं थे, जो शायद चोरी-छिपे यह बेचते हों। गुटखा चेन में डमी फर्में, गुप्त गोदाम, अंतरराज्यीय सप्लाई लाइन, नकली इनवॉइस और जाली दस्तावेज शामिल होते हैं। मुंढे जानते हैं कि नियमों का पालन न करने की कीमत कारोबार की लागत में शामिल की जा सकती है, इसीलिए वह संगठित अपराध का खात्मा जरूरी मानते हैं।

जुलाई की शुरुआत में, एफडीए अफसरों ने अकोला में एक गुटखा निर्माता यूनिट पर छापा मारकर 1.23 करोड़ रुपये कीमत का सामान, मशीनरी और प्रतिबंधित उत्पाद जब्त किए। 14 अगस्त को मुंढे के विभाग ने बॉलीवुड सितारों शाहरुख खान, अजय देवगन और टाइगर श्रॉफ को 'विमल इलायची' के विज्ञापनों में दिखने के लिए कारण बताओ नोटिस भेजा। एफडीए की नजर में यह कंपनी के प्रतिबंधित पान मसाला उत्पादों का संभावित सरोगेट प्रमोशन है। अभिनेताओं को 15 दिन में जवाब देना है। एफडीए के नोटिस कानूनी जांच में कितना टिकते हैं, अलग बात है, लेकिन संदेश बहुत साफ हैः विरासत की तरह ही, सेलिब्रिटी होना भी छूट पाने का आधार नहीं बन जाता।



> मुंढे के तौर-तरीकों में, प्रतिष्ठा से कोई छूट नहीं मिलती और मशहूर होने से कोई सुरक्षा नहीं मिलती

अभियान रोजमर्रा की खपत वाली उन जगहों तक भी पहुंचा जो ज्यादा चर्चा में भले न हों, लोगों के निजी जीवन से जुड़ी हैं। सतारा जिले के कराड और मुंबई के क्रॉफर्ड मार्केट और कांदिवली की छापेमारी में 34.6 लाख रुपये कीमत के कॉस्मेटिक्स जब्त हुए।

खबरों के मुताबिक, कई ग्रामीण इलाकों में छापामारी के डर से बिना लाइसेंस चल रही डेयरियों ने हजारों लीटर दूध का स्टॉक नष्ट कर दिया। मुंढे के एक्शन में चेतावनी और निर्देश, दोनों शामिल थेः रजिस्ट्रेशन कराएं, नियम पालन करें और सिस्टम से जुड़ें। उन्होंने ग्राहकों से भी रजिस्ट्रेशन की जांच के साथ, संदिग्ध उत्पादों पर सवाल उठाने और मिलावट की रिपोर्ट करने की अपील की।

एफडीए की जांच में यूरिया, डिटर्जेंट, कास्टिक सोडा, स्टार्च, ग्लूकोज, फॉर्मेलिन और अन्य केमिकल जैसी चीजों से नकली दूध बनाने का पता चला। तय सीमा से ज्यादा एंटीबायोटिक के अंश और दूसरी अशुद्धियां मिलीं। जुलाई में, मुंढे ने दूध की पूरी सप्लाई चेन, यानी कलेक्शन सेंटर और डेयरी से लेकर ट्रांसपोर्टर, थोक विक्रेता और खुदरा विक्रेता तक पर सख्ती की और पता लगाने की क्षमता, कोल्ड-चेन बनाए रखने और फूड-सेफ्टी सिस्टम को अनिवार्य कर दिया।

शेष पेज 2 पर ▸

# क्षत-विक्षत छवि और बर्बाद विरासत

## संयुक्त राष्ट्र ने भी एसआईआर पर सवाल उठाए हैं और बड़ी संख्या में मतदाताओं, खासकर अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों को बाहर किए जाने पर चिंता जताई है

अभय शुक्ला

फोटो: गेटी इमेजेज

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट ने एसआईआर में पारदर्शिता की कमी पर गंभीर संदेह व्यक्त किया है

काफी समय से दीवार पर लिखी इबारत बिल्कुल साफ दिख रही है, जिसे शायद 'अंध-भक्तों' के अलावा हर कोई देख सकता है। पिछले एक दशक में शासन-प्रशासन के पैमानों पर भारत की लगातार गिरावट- चाहे वह प्रेस की आजादी, कानून का राज, असमानता, मानवाधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता हो या फिर पर्यावरण संरक्षण और अकादमिक आजादी- सरकारी संस्थाओं के ढांचागत पतन और अंतरराष्ट्रीय संधियों और समझौतों के प्रति बढ़ता तिरस्कार शीशे की तरह साफ है।

वैश्विक स्तर पर इसके खिलाफ आवाज तो उठनी ही थी। इसका पहला संकेत 2021 के बाद सामने आया जब वी-डेम, ईआईयू (इकोनॉमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट) और फ्रीडम हाउस जैसी संस्थाओं ने भारत के लोकतांत्रिक दर्जे को घटाकर 'आंशिक रूप से स्वतंत्र', 'चुनावी तानाशाही' और 'दोषपूर्ण लोकतंत्र' की श्रेणी में डाल दिया। वर्ष 2025 में, देश के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) की स्वायत्तता में कथित कमी और मानवाधिकार हनन को रोकने में विफलता के आधार पर मानवाधिकार संस्थाओं के वैश्विक गठबंधन ने उसकी रेटिंग घटाकर 'बी' कर दी।

अमेरिकी अंतरराष्ट्रीय धार्मिक स्वतंत्रता आयोग ने अपनी कांग्रेस से सिफारिश की है कि भारत को 'विशेष चिंता वाला देश' और 'अंतरराष्ट्रीय दमन का स्रोत' घोषित किया जाए। उसने अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के आरोप में उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और असम के मुख्यमंत्रियों समेत संघ और बजरंग दल से जुड़े संगठनों पर प्रतिबंध लगाने की भी मांग की है। साथ ही, आयोग ने उन कंपनियों की जांच की मांग की है जिनके उपकरणों का इस्तेमाल अल्पसंख्यकों को निशाना बनाने के लिए किया गया और नफरत फैलाने वाले ऑनलाइन टेक प्लेटफॉर्म्स के खिलाफ सुनवाई करने को कहा है।

इसी महीने एमनेस्टी इंटरनेशनल ने भारत सरकार को पत्र लिखकर उसपर नरसंहार संधि और जिनेवा समझौते के उल्लंघन का आरोप लगाया। उसका कहना है कि भारत ने इसराइल को भारत-निर्मित हथियारों, गोला-बारूद और सैन्य साजो-सामान की करीब 800 खेपें भेजने की इजाजत देकर गाजा में इसराइल के नरसंहार में साझीदारी निभाई है जबकि इसराइल युद्ध अपराधों, नरसंहार, नस्ली सफाए और रंगभेद का दोषी ठहराया जा चुका है। एमनेस्टी ने ऐसी कम-से-कम सात भारतीय कंपनियों की पहचान की है, जिनमें सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां भी शामिल हैं। यह स्थिति हमें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गंभीर नैतिक और कानूनी नतीजों के मुहाने पर ला खड़ा करती है।

लेकिन सबसे बड़ा झटका पिछले महीने संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट से लगा, जो वस्तुतः एक 'कारण बताओ नोटिस' है। भारत सरकार को लिखे पत्र में धार्मिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार और अल्पसंख्यकों के मामलों से जुड़े संयुक्त राष्ट्र के तीन स्वतंत्र विशेषज्ञों ने उस तौर-तरीके पर गंभीर संदेह जताया है जिसके तहत भारत निर्वाचन आयोग द्वारा बिहार, बंगाल और देश के बाकी हिस्सों में मतदाता सूचियों का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) चलाया गया है या चलाया जा रहा है। उन्होंने इस मनमानी प्रक्रिया की अपारदर्शिता, कार्यप्रणाली, चुनिंदा रवैये और इसके औचित्य और उद्देश्य पर कड़े सवाल उठाए हैं। पत्र में सरकार के अपने स्रोतों और सार्वजनिक पटल पर उपलब्ध तथ्यों और आंकड़ों का ही हवाला दिया गया है।

> मानवाधिकारों के बेहद संदिग्ध रिकॉर्ड और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग पड़े इसराइल से दोस्ती के कारण भारत ने नैतिक कद घटा लिया है और ग्लोबल साउथ, सार्क और ब्रिक्स का नेतृत्व भी गंवा दिया है

इस पत्र में बड़े पैमाने पर मतदाताओं, खासकर अल्पसंख्यक समुदायों और पश्चिम बंगाल के लोगों के नाम काटे जाने पर गहरी चिंता जताई गई है। इसमें साफ तौर पर इस बात का जिक्र किया गया है कि निर्वाचन आयोग और सरकार के ये सभी कदम उन अंतरराष्ट्रीय संधियों और प्रस्तावों का उल्लंघन प्रतीत होते हैं जिन पर भारत ने हस्ताक्षर किए हैं। इन विशेषज्ञों ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद को अपनी अंतिम रिपोर्ट सौंपने से पहले सरकार से तय समय-सीमा के भीतर स्पष्टीकरण और जवाब मांगा है।

इस आलेख को लिखे जाने के समय तक सरकार ने संयुक्त राष्ट्र को कोई औपचारिक उत्तर नहीं दिया था, लेकिन विदेश मंत्रालय ने एक संक्षिप्त बयान जारी कर इन आरोपों को 'निराधार' और 'अनुचित' बताया है और कहा है कि इस प्रक्रिया को देश के सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त है।

संसद में 30 जुलाई को एक सवाल के जवाब में एक मंत्री ने लगभग यही बातें दोहराईं और जोड़ा कि मृत, विस्थापित या पता बदल चुके लोगों के नाम हटाना एक नियमित प्रक्रिया है। इस बयान में कोई दम नहीं दिखता, क्योंकि इस लापरवाह शासन पर होने वाली किसी भी आलोचना को खारिज करने के लिए मंत्रालय का यह एक तय ढर्रा बन चुका है।

इसके अलावा, मंत्री ने बंगाल में रहस्यमयी और अपारदर्शी 'तार्किक विसंगति' वाले नियम के तहत हटाए गए नामों, अपील लंबित होने के बावजूद वोट देने से रोके गए 27 लाख लोगों, चुनाव आयोग द्वारा इस्तेमाल किए गए अप्रमाणित और गोपनीय एल्गोरिदम की अपारदर्शिता, या मतदाता सूची से मुसलमानों के अनुपातहीन ढंग से नाम काटे जाने के कारणों का कोई उल्लेख नहीं किया।

संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों का यह पत्र केवल निर्वाचन आयोग पर ही आरोप पत्र नहीं है, बल्कि यह हमारे सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका पर भी सवालिया निशान है। अदालत के पास बेलगाम होते निर्वाचन आयोग पर लगाम लगाने के तमाम मौके थे, लेकिन वह ऐसा करने में नाकाम रही। इसकी वैधानिकता, कार्यप्रणाली, औचित्य और इससे नागरिकता पर पड़ने वाले असर की गहराई से जांच करने के बजाय अदालत साल भर सतही बातों में उलझी रही, जब तक कि एसआईआर प्रक्रिया उस मुकाम पर नहीं पहुंच गई जहां इसे पलटना असंभव हो। उसने इस स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया के आधार पर चुनाव आयोग को दो चुनाव कराने की छूट दी, और तब भी खामोश रही जब आयोग ने इसे पूरे देश में लागू कर दिया।

अब उसने एसआईआर पर अपनी अंतिम मुहर लगा दी है, जिससे लाखों और लोगों के नाम मतदाता सूची से काटे जाने का रास्ता साफ हो गया है। अदालत देश के नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने में विफल रही है, और यह बात संयुक्त राष्ट्र के पत्र से साफ होता है। संयुक्त राष्ट्र का यह पत्र हमारे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (जो पहले ही अपनी साख खो चुका है) और पूरी तरह निष्प्रभावी हो चुके अल्पसंख्यक आयोग पर भी एक तीखी टिप्पणी है। मुझे याद नहीं कि अपने अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए और अपने ऊपर खर्च होने वाले करोड़ों रुपयों को सही साबित करते हुए इन दोनों में से किसी भी संस्था ने पिछली बार जनता के पक्ष में कब आवाज उठाई थी। एसआईआर के जरिये लाखों मतदाताओं (विशेषकर अल्पसंख्यकों) को मताधिकार से वंचित किए जाने, उनकी नागरिकता पर पैदा किए गए खतरनाक संशय और कई राज्यों द्वारा उन्हें कल्याणकारी योजनाओं से बेदखल किए जाने पर चुप्पी साधकर इन दोनों आयोगों ने इस नापाक कवायद की तरफ से आंखें मूंद ली हैं और अपने मूल दायित्व के साथ विश्वासघात किया है।

भारत के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय बदनामी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है और हमारी सरकार हमेशा के लिए इस पर पर्दा नहीं डाल सकती। मानवाधिकारों के बेहद संदिग्ध रिकॉर्ड और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग पड़े इसराइल से जुड़ाव के कारण हमने अपना नैतिक कद, मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं की पारंपरिक पैरोकारी, और ग्लोबल साउथ, सार्क एवं शायद ब्रिक्स तक का अपना नेतृत्व गंवा दिया है।

हम पाकिस्तान जैसे अपने विरोधी देश, जो इस समय संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद की अध्यक्षता कर रहा है, को अपने खिलाफ कार्रवाई करने, प्रतिबंध लगाने और आईसीसी या आईसीजे से वारंट जारी कराने का मौका दे रहे हैं। हमने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट पाने की अपनी रही-सही संभावनाओं को भी खुद ही मटियामेट कर दिया है।

हमने तमाम अहम अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर खुद को अलग-थलग कर लिया है और अमेरिका और इसराइल के पिछलग्गू बनकर रह गए हैं। भाजपा की धार्मिक कट्टरता और आंतरिक सत्ता की अंधी हवस देश के लिए असहनीय कीमत वाली साबित हो रही है।

क्या गांधी, नेहरू, टैगोर, कबीर और विवेकानंद के भारत के साथ इससे बेहतर सलूक नहीं होना चाहिए? ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

# कोई कितना भी बड़ा हो, बख्शा न जाए

पेज एक का शेष

मुंढे मराठवाड़ा के एक किसान परिवार से आते हैं। फिटनेस के शौकीन हैं और 2004 की यूपीएससी परीक्षा में ऑल इंडिया रैंक #20 हासिल करने के बाद आईएएस में आए और 2005 में महाराष्ट्र कैडर में शामिल हुए। उनका करियर मुश्किल लेकिन रोमांचक कामों और छोटे कार्यकाल वाली नियुक्तियों से भरा रहा है।

नवी मुंबई में बतौर म्युनिसिपल कमिश्नर वह सुबह-सुबह शहर में निकल जाते, अवैध निर्माण और होर्डिंग उनके निशाने पर रहते और जोर रेवेन्यू कलेक्शन बढ़ाने पर होता। उन्हीं के नेतृत्व में प्रॉपर्टी टैक्स की जांच से सैकड़ों करोड़ का बकाया सामने आया। अलग-अलग पार्टियों के कॉरपोरेटरों ने उनके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पेश किया, लेकिन आम शहरी उनके समर्थन में खड़े हो गए।

पुणे के सार्वजनिक परिवहन विभाग, नासिक के नागरिक प्रशासन और बाद में कोविड-19 के दौरान नागपुर में बतौर म्युनिसिपल कमिश्नर, उन्होंने उन अस्पतालों पर कार्रवाई की जिन पर मरीजों को डराकर फायदा उठाने और अत्यधिक बिल वसूलने के आरोप थे। उनके छोटे कार्यकाल में एक जैसा पैटर्न दिखता है: जिस विभाग में जाते हैं, वहां प्रशासनिक कामकाज में तेजी आ जाती है, उन्हें जनता का समर्थन मिलता है, राजनीतिक हलकों में बेचैनी होती है और आखिरकार उनका तबादला हो जाता है।

चाहने वाले उन्हें ऐसे सरकारी अधिकारी के तौर पर देखते हैं जो ताकतवर लोगों, मसलन नेता, ठेकेदार या कारोबारी (जो नियम तोड़ने के आदी हैं) के लिए नियम नहीं तोड़ता। लेकिन आलोचक उन्हें ऐसा प्रशासक मानते हैं जो सलाह-मशविरे को देरी और चुने हुए जन-प्रतिनिधियों को लोकतंत्र में हिस्सेदार के बजाय रुकावट मानता है।

पान विक्रेताओं जैसे छोटे कारोबारियों ने 'बिना सोचे-समझे की गई कार्रवाई' का विरोध किया है। बॉम्बे हाईकोर्ट ने भी एफडीए को अधिकारों का इस्तेमाल समझदारी से करने की याद दिलाई है। कैडिला फार्मास्यूटिकल्स के मामले में, कोर्ट ने नियामक के "पहले कार्रवाई, फिर सवाल" वाले रवैये की आलोचना की; क्योंकि कुछ दवाओं की बिक्री और वितरण बिना किसी सुनवाई रोककर स्टॉक जब्त कर लिया गया था। एफडीए अपने आदेश वापस लेने और 'शो-कॉज नोटिस' के जरिये आगे बढ़ने पर सहमत हो गया है।

मुंढे के एफडीए कार्यकाल की असली परीक्षा यह नहीं कि उन्होंने कितनी दुकानें बंद करवाईं, बल्कि यह होगी कि क्या वह नियम-उल्लंघन के प्रति अपनी 'जीरो-टॉलरेंस' नीति को एक संस्थागत व्यवस्था में बदल पाते हैं, जिसमें स्पष्ट प्रक्रियाएं, पहले से तय निरीक्षण, प्रशिक्षित फील्ड स्टाफ, पारदर्शी सुनवाई और एक ऐसी संस्कृति हो जहां नियमों का पालन करना एक सामान्य बात हो, न कि घबराहट में किया जाने वाला काम। ■

# स्वतंत्र लेकिन आज़ाद नहीं

## भारत की गिरती स्थिति को वैश्विक निगरानी संस्थाओं ने तो नोट किया है पर देश में इसे छिपाने या नज़रअंदाज़ करने की कोशिश

वी-डेम का कहना है कि अभिव्यक्ति की आज़ादी, मीडिया और सिविल सोसाइटी के मामले में भारत 'उतना ही तानाशाही वाला देश है जितना पाकिस्तान और यह बांग्लादेश एवं नेपाल, दोनों से ही बदतर स्थिति में है'

आकार पटेल

स्वाधीनता का सीधा संबंध स्वतंत्रता से है और इसके बिना यह शब्द बेमानी है। कुछ साल पहले मैंने भारत में स्वतंत्रता की स्थिति का जायजा लिया था कि आखिर दुनिया हमारी स्वतंत्रता को कैसे देखती है। मैंने अपनी एक किताब के लिए यह काम किया था। लेकिन समय-समय पर मैं इन सूचकांकों की सूची को फिर से देखता हूं ताकि यह पता चल सके कि क्या बदलाव आए हैं।

आजादी के दिन मुझे यह करना सही लगा। यहां जिन संगठनों का जिक्र किया गया है, हो सकता है कि पाठक उनसे परिचित न हों, लेकिन वे प्रतिष्ठित हैं और उनके निष्कर्षों का सम्मान किया जाता है। आखिर में हम देखेंगे कि सरकार उनके बारे में क्या कहती है। आइए, शुरू करते हैं।

**प्यू रिसर्च सेंटर** एक अमेरिकी संस्था है जो किसी देश में लंबे समय से चल रहे (दीर्घावधि) रुझानों पर नजर रखती है। यह दुनिया भर में सरकारी पाबंदियों और सामाजिक टकरावों की समीक्षा करती है। इसकी ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में कहीं अधिक सरकारी पाबंदियां हैं और सामाजिक टकराव का स्तर 'बहुत ज्यादा' है। 2019 तक, भारत नीचे दिए गए सभी मामलों में टॉप 10 देशों में शामिल था।

**श्रेणियां**

- धार्मिक रीति-रिवाजों से जुड़ी सामाजिक शत्रुता वाले देश
- अंतर-धार्मिक तनाव और हिंसा के ऊंचे स्तर वाले देश
- संगठित समूहों द्वारा धार्मिक हिंसा के ऊंचे स्तर वाले देश
- व्यक्तिगत और सामाजिक समूहों के उत्पीड़न के ऊंचे स्तर वाले देश

**सिविकस** नागरिक समाज संगठनों का वैश्विक गठबंधन है। यह संगठन बनाने, शांतिपूर्ण सभा करने और अपनी बात कहने की आजादी पर नजर रखता है।

इस रेटिंग में भारत के नागरिक स्थान का दर्जा 'बाधित' से गिरकर 'दमित' हो गया है। इसमें कहा गया है कि "भारत के नागरिक स्थानों की स्थिति का बिगड़ना चिंताजनक है—खासकर कई तरह के प्रतिबंधात्मक कानूनों के जरिये अभिव्यक्ति की आजादी पर हमले और मानवाधिकार समूहों के काम में बाधा डालने की कोशिशें।" इसी वजह से, "भारत को उन देशों की वॉचलिस्ट में शामिल किया गया है, जहां नागरिक आजादी में तेजी से गिरावट आई है।"

**इकोनॉमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट,** यूके की 'इकोनॉमिस्ट' मैगजीन का ही एक हिस्सा है। यह 'डेमोक्रेसी इंडेक्स' (लोकतंत्र सूचकांक) जारी करती है, जिसमें भारत को "खामियों वाला लोकतंत्र" (flawed democracy) बताया गया है। इसके अनुसार, यह "नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में लोकतंत्र के कमजोर पड़ने का नतीजा" है और "मोदी के दौर में धर्म का बढ़ता असर—जिसकी नीतियों ने मुसलमानों के प्रति नफरत और धार्मिक टकराव को बढ़ावा दिया है—उसने देश के राजनीतिक ताने-बाने को नुकसान पहुंचाया है।"

1941 में स्थापित **फ्रीडम हाउस** का कहना है कि यह "दुनिया भर में लोकतंत्र के समर्थन और बचाव के लिए समर्पित सबसे पुरानी अमेरिकी संस्था है।" अपनी 'फ्रीडम इन द वर्ल्ड' रिपोर्ट में, भारत की स्थिति 2014 में "आजाद" से गिरकर "आंशिक रूप से आजाद" हो गई है। कश्मीर, जिसे अलग से आंका गया है, "आजाद नहीं" की श्रेणी में है। इसमें कहा गया है कि "भाजपा के शासनकाल में भेदभावपूर्ण नीतियां अपनाई गईं और मुसलमानों के उत्पीड़न में बढ़ोतरी हुई है।"

वॉशिंगटन स्थित **वर्ल्ड जस्टिस प्रोजेक्ट** का कहना है कि यह एक "स्वतंत्र और कई क्षेत्रों में काम करने वाला संगठन है, जो दुनिया भर में कानून के शासन (rule of law) को बढ़ावा देने के लिए काम कर रहा है।" इसका 'रूल ऑफ लॉ इंडेक्स' जवाबदेही, निष्पक्ष कानून, खुली सरकार और सुलभ और निष्पक्ष न्याय पर नजर रखता है। भारत की रैंकिंग दुनिया में 66वें स्थान से गिरकर 2022 में 77वें और अब 86वें स्थान पर आ गई है।

> ग्लोबल इंडेक्स में भारत की गिरती रैंकिंग एक ऐसी कहानी बयां करती है जिसे इनकार या विज्ञापन के जरिये ठीक नहीं किया जा सकता

**रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स** का मुख्यालय पेरिस में है और यह हर साल 'वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स' जारी करता है। इस इंडेक्स में भारत 157वें स्थान पर है। इसके कारणों में पत्रकारों के खिलाफ हिंसा में बढ़ोतरी, मीडिया के मालिकाना हक का कुछ ही हाथों में सिमटा होना और मीडिया आउटलेट्स का खुलकर किसी राजनीतिक विचारधारा के साथ जुड़ना शामिल है।

1977 में वॉशिंगटन में स्थापित **केटो इंस्टीट्यूट** का कहना है कि उसका विजन "एक ऐसा आजाद और खुला समाज है, जिसमें आजादी हर व्यक्ति को शांति के साथ खुशहाली और सार्थक जीवन जीने का मौका देती है।" इसके 'ह्यूमन फ्रीडम इंडेक्स' में भारत दुनिया में 87वें स्थान से गिरकर 110वें स्थान पर आ गया है। इसकी वजह व्यक्तिगत और आर्थिक आजादी के मामले में कम स्कोर मिलना है।

बर्लिन स्थित मौजूद **ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल** का कहना है कि वह "भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले सिस्टम और नेटवर्क का पर्दाफाश करके ताकतवर और भ्रष्ट लोगों को जवाबदेह ठहराती है।" इसके 'करप्शन परसेप्शन इंडेक्स' (भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक) में भारत की रैंकिंग 85वें से गिरकर 91वें स्थान पर आ गई है। इसके सर्वे के मुताबिक, पिछले 12 महीनों में 39 प्रतिशत भारतीयों को रिश्वत देनी पड़ी।

वॉशिंगटन स्थित **इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट** 'ग्लोबल हंगर इंडेक्स' (वैश्विक भुखमरी सूचकांक) जारी करता है। भारत को 102वां स्थान मिला है और भुखमरी के मामले में इसकी स्थिति "गंभीर" है।

**गोथेनबर्ग यूनिवर्सिटी** 'वैराइटीज ऑफ डेमोक्रेसी' (V-Dem) इंडेक्स तैयार करती है, जो संस्थागत लोकतंत्र और ऑटोक्रेटाइजेशन (तानाशाही की ओर झुकाव) की जांच करता है। इसके अनुसार, 2014 के बाद से पिछले 10 सालों में दुनिया के सभी देशों के मुकाबले भारत में "सबसे बड़े बदलावों में से एक" नोट किए गए हैं। भारत ने लोकतंत्र का अपना दर्जा खो दिया और उसे 'इलेक्टोरल ऑटोक्रेसी' (चुनावी तानाशाही) की श्रेणी में रखा गया, जिससे वह हंगरी और तुर्की जैसे देशों की कतार में शामिल हो गया। अभिव्यक्ति की आजादी, मीडिया और नागरिक समाज के मामले में भारत "पाकिस्तान जितना ही तानाशाही वाला और बांग्लादेश और नेपाल, दोनों से भी बदतर" स्थिति है। भारत ने अपने नागरिकता कानूनों के ज़रिए "धर्म के आधार पर भेदभाव" शुरू किया है।

2020 में, निष्कर्षों से चिंतित होकर, सरकार ने आदेश दिया कि 32 वैश्विक सूचकांकों के लिए एक 'एकल, सूचनात्मक डैशबोर्ड' तैयार किया जाए। यह निगरानी अभ्यास "केवल रैंकिंग में सुधार करने के लिए नहीं बल्कि निवेश को आकर्षित करने और विश्व स्तर पर भारत की धारणा को आकार देने के लिए सिस्टम में बदलाव और सुधार लाने के लिए था।"

बाद में सरकार ने कहा कि वह "एक व्यापक प्रचार अभियान" शुरू करेगी जो विज्ञापन और "मंत्रालयों की सूक्ष्म साइटों" के माध्यम से "भारत की धारणा को आकार देगा" और यह "वैश्विक सूचकांकों की समस्याओं, मापदंडों और डेटा स्रोतों को भी प्रचारित करेगा।"

इससे लोकतांत्रिक सूचकांकों में भारत की गिरावट नहीं रुक सकी; क्योंकि यह गिरावट परफॉर्मेंस से जुड़ी थी, न कि लोगों की सोच से, और इसे मीडिया या प्रचार के जरिये ठीक नहीं किया जा सकता था।

जैसे-जैसे गिरावट जारी रही, सरकार ने पहले तौर-तरीकों को और फिर इरादों को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया। हम अभी भी उसी स्थिति में हैं। ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

# ...और अब 'जेन अल्फा' अपनी स्क्रीन से निकलकर सड़कों पर आ गई है

## क्या 'स्कूल ठीक करो' मुहिम का मकसद सिर्फ़ टूटे पंखे और गंदे टॉयलेट ठीक करना ही है या उससे भी कुछ आगे भी?

हरजिंदर

बच्चे कक्षाओं से निकल पड़े हैं, सरकारी दफ्तरों पर दस्तक दे रहे हैं, स्कूलों के गेट पर ताले जड़े हैं, सड़कों पर धरने जारी हैं, वे जवाब मांग रहे हैं। वे कक्षाओं में पंखे, पीने का साफ पानी, साफ शौचालय, अधिक शिक्षक, बेहतर भोजन, डेस्क, बेंच, पुस्तकालय और एक मामले में स्कूल तक पहुंचने के लिए पक्की सड़क चाहते हैं। पिछले तीन हफ्तों में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र वगैरह से लगातार ऐसे विरोध-प्रदर्शनों की खबरें आई हैं।

शुरुआत में ये घटनाएं अलग-अलग स्थानीय उबाल जैसी लग रही थीं, जिन पर हालिया जेन ज़ी प्रदर्शनों का असर दिखाई दे रहा था। लेकिन अब ये एक और बड़े जन-आंदोलन की शुरुआत जैसी दिखने लगी हैं। इस बार अगुआई जेन अल्फा के हाथों में है।

उत्तर प्रदेश के किशनपुर स्थित सर्वोदय इंटर कॉलेज के छात्र सबसे पहले राष्ट्रीय स्तर पर सुर्खियों में आए। कक्षा 12 के चार छात्रों ने जून-जुलाई में जंतर-मंतर पर हुए आंदोलन में हिस्सा लिया था। घर लौटने के बाद उन्होंने अपने स्कूल में विरोध-प्रदर्शन आयोजित किया। इनमें से एक अंकुर सोनकर ने कहा कि दिल्ली के आंदोलन से वह सीख लेकर लौटा था कि अपने अधिकारों के लिए लड़ो।

11 अगस्त को हमीरपुर के चंदूपुर गांव के करीब 200 बच्चे और उनके माता-पिता पांच किलोमीटर दूर जिला कलेक्ट्रेट तक तिरंगा यात्रा लेकर पहुंचे। उनकी शिकायत- उनके स्कूल तक पक्की सड़क नहीं थी। हर बारिश में उन्हें कीचड़ से होकर गुजरना पड़ता था।

ऐसा लगता है कि एक और बड़े पैमाने पर लामबंदी की शुरुआत हो रही है, जिसमें इस बार 'जेन अल्फा' सबसे आगे है

गया में सिमुआरा मिडिल स्कूल के 40-50 छात्र करीब चार किलोमीटर पैदल चलकर एसडीएम कार्यालय पहुंचे। उनकी मांग थी- खाने लायक मिड-डे मील, चलने वाले पंखे और ऐसे बेंच जिन पर बैठा जा सके...। राजस्थान के बाड़मेर में छात्रों ने स्कूल के गेट पर तब तक ताला लगाए रखा, जब तक अधिकारियों ने रिक्त पदों पर तीन शिक्षकों की नियुक्ति का भरोसा नहीं दिया। मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा में छात्रों ने हॉस्टल के खराब खाने के खिलाफ प्रदर्शन किया। महाराष्ट्र में छात्रों ने शौचालय, पानी और शिक्षकों की गैरहाजिरी का मुद्दा उठाया। अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग स्कूल, लेकिन शिकायतें हैरतअंगेज ढंग से एक जैसी।

लखनऊ में जय प्रकाश नारायण सर्वोदय विद्यालय की छात्राएं मूसलाधार बारिश के बीच ढाई किलोमीटर पैदल चलीं, सड़क पर बैठीं और ट्रैफिक रोक दिया। शिकायत थी कि स्कूल में फिजिक्स और बायोलॉजी के शिक्षक नहीं हैं। पढ़ाने वाला ही कोई नहीं होगा तो वे बोर्ड की परीक्षा कैसे पास करेंगी?

आजमगढ़ के स्मिथ इंटर कॉलेज में छात्रों का विरोध-प्रदर्शन का नारा वायरल हो गया- "केमिस्ट्री शिक्षक न होने से तेजाब सा झुलस रहा है हमारा भविष्य।" स्कूल में करीब 26 साल से केमिस्ट्री और फिजिक्स के शिक्षक नहीं थे!

मध्य प्रदेश के उज्जैन में सैकड़ों स्कूली छात्राओं ने सरकारी स्कूलों को मिलाने या 6 से 10 किलोमीटर दूर दूसरी जगह स्थानांतरित करने की योजना के खिलाफ प्रदर्शन किया। यहां मामला महज बुनियादी ढांचे का नहीं था। खासकर लड़कियों के लिए स्कूल की दूरी यह तय कर सकती है कि वे स्कूल जाएंगी भी या नहीं।

बेशक, आंदोलन को गति मिलना एक वजह है, लेकिन ये प्रदर्शन इस धारणा की भी पुष्टि करते हैं कि शिकायत दूर करने और उसे ऊपर तक पहुंचाने के पारंपरिक रास्ते- शिक्षक, स्कूल प्रबंधन समितियां, स्थानीय जनप्रतिनिधि आदि काम नहीं कर पाए हैं। जेन अल्फा के प्रदर्शनों ने यह भी दिखाया है कि ऑनलाइन दृश्यता वास्तविक दुनिया में एक तरह की ताकत बन सकती है।

डिजिटल दुनिया में पली-बढ़ी इस पीढ़ी ने अपने रोजमर्रा की जीवनशैली को ही हथियार बना लिया है और अब सत्ता-प्रतिष्ठान के खिलाफ लड़ाई लड़ने का एक खाका भी सामने है। इंस्टाग्राम रील्स अब लामबंदी का औजार हैं। एआई से बने पोस्टर वायरल हो रहे हैं। छोटे वीडियो स्थानीय शिकायतों को सार्वजनिक मुद्दों में बदल रहे हैं। जैसा कि एक टिप्पणीकार ने कहा, "अब जेन अल्फा स्क्रीन से निकलकर सड़कों पर आ रही है।"

धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे के बाद कॉकरोच जनता पार्टी (सीजेपी) ने अपना ध्यान सरकारी स्कूलों की ओर मोड़ दिया है। पार्टी के संस्थापक अभिजीत दिपके ने स्वतंत्रता दिवस पर महाराष्ट्र के हिंगोली जिले में अपने गांव से 'स्कूल ठीक करो' अभियान की शुरुआत की।

पार्टी की राजस्थान के सरकारी स्कूलों का ऑडिट कराने की योजना की घोषणा उसके सह-संयोजक आशुतोष रांका ने की। उन्होंने कहा कि जयपुर, कोटा, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर, भरतपुर, धौलपुर, बाड़मेर और हनुमानगढ़ के सरकारी स्कूलों से ऑडिट कराने के अनुरोध पहले ही आ चुके हैं। राजस्थान सरकार इससे घबराई हुई नजर आई। 16 अगस्त को उसने राज्य संचालित स्कूलों में बाहरी लोगों के अनधिकृत प्रवेश पर रोक लगा दी। राजस्थान इस बात का बेहद स्पष्ट उदाहरण है कि स्कूलों का बुनियादी ढांचा राजनीतिक मुद्दा क्यों बन गया है।

25 जुलाई 2025 की सुबह झालावाड़ जिले के पिपलोदी गांव में एक सरकारी उच्च प्राथमिक स्कूल की छत गिरने से सात बच्चों की मौत हो गई थी। अगले ही दिन नागौर जिले के खरियावास गांव में एक और स्कूल की छत गिर गई। हादसा स्कूल की छुट्टी के बाद हुआ, इसलिए एक और त्रासदी टल गई।

मामला अदालत पहुंचा तो राजस्थान हाईकोर्ट ने 86,934 जर्जर कक्षाओं को बंद करने का आदेश दिया। विशेषज्ञों का अनुमान है कि इनकी मरम्मत या दोबारा निर्माण पर करीब 20,000 करोड़ रुपये खर्च हो सकते हैं। खबरों के मुताबिक राज्य के पास हर साल मरम्मत के लिए सिर्फ करीब 375 करोड़ रुपये का बजट है।

आखिर बच्चों को उन चीजों की मांग क्यों करनी पड़ रही है, जिन्हें उन्हें कभी नकारा ही नहीं जाना चाहिए था? क्या 'स्कूल ठीक करो' अभियान अपने मूल सवालों तक लौट सकता है?

भारत दशकों से सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा, शिक्षा का अधिकार और हर बच्चे के लिए समान अवसर की बात करता रहा है। लेकिन वंचित बच्चों का अनुभव गहरे तौर पर असमान है। किसी बच्चे को कलेक्ट्रेट तक पांच किलोमीटर पैदल चलकर उस अधिकार की मांग क्यों करनी पड़े, जो उसे स्वाभाविक रूप से मिलना चाहिए? उसे सिर्फ इसलिए स्कूल क्यों छोड़ना पड़े कि स्कूल बहुत दूर है?

यह समस्या बुनियादी सुविधाओं से भी ज्यादा बुनियादी है। यह 'शिक्षा तक पहुंच' का सवाल है, गरीबी से बाहर निकलने के रास्ते और सामाजिक गतिशीलता के अवसर का भी। उम्मीद करनी चाहिए कि जेन अल्फा के ये विरोध-प्रदर्शन सरकारी स्कूलों की भूमिका पर भी नए सिरे से गंभीर विचार करने को मजबूर करेंगे। आखिर उन बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार को जमीनी हकीकत बनाना इन्हीं स्कूलों की जिम्मेदारी है, जिनके परिवारों के पास उन्हें निजी स्कूलों में भेजने के साधन नहीं हैं।

पिछले एक दशक में 90,000 से ज्यादा सरकारी स्कूल 'युक्तिकरण' के नाम पर बंद या दूसरे स्कूलों में मिला दिए गए हैं। 'युक्तिकरण' कम नामांकन वाले स्कूलों को बंद करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला नौकरशाही का जुमला है। जमीन पर इसका मतलब है कि किसी आदिवासी बस्ती या ओबीसी गांव के बच्चे को अब हर तरफ चार-पांच किलोमीटर अतिरिक्त चलना होगा। मान लीजिए गांव की कोई लड़की भाग्यशाली है और उसके माता-पिता उसे पढ़ाने के लिए तैयार भी हैं, तो कितनी संभावना है कि वे उसे रोज एक तरफ पांच किलोमीटर पैदल स्कूल जाने देंगे?

> बुनियादी सुविधाओं की मांग करने वाले किसी एक विरोध-प्रदर्शन से कहीं ज्यादा की जरूरत होगी। जब शिक्षा का हक़ गारंटी के बजाय विशेषाधिकार बन जाए, तो समझ लीजिए कि असली तस्वीर क्या है

हैरत नहीं कि बुनियादी स्तर पर नामांकन घटा है और वर्षों में पहली बार सकल नामांकन अनुपात नीचे आया है? सर्व शिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार कानून ने जितना करना चाहिए था, उतना नहीं किया, लेकिन हर बच्चे के पैदल पहुंचने की दूरी के भीतर स्कूल का संवैधानिक अधिकार एक अच्छी शुरुआत थी। इस नुकसान की भरपाई के लिए स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं की मांग करने वाले किसी एक विरोध-प्रदर्शन से कहीं ज्यादा की जरूरत होगी। जब शिक्षा तक पहुंच गारंटी के बजाय विशेषाधिकार बन जाए, तो समझ लीजिए कि असली तस्वीर क्या है। ■

> राजस्थान हाईकोर्ट ने 86,934 जर्जर कक्षाओं को बंद करने का आदेश दिया। विशेषज्ञों का अनुमान है कि इनकी मरम्मत या दोबारा निर्माण पर करीब 20,000 करोड़ रुपये खर्च हो सकते हैं

# शिक्षकों को शिक्षक नहीं समझेंगे तो नुकसान किसका?

## पढ़ाई का समय बर्बाद होने का मतलब है भविष्य का नुकसान। शिक्षक के समय पर सबसे पहला हक क्लासरूम का होता है

कुमार राणा

सुनने में शायद बड़ी बात लगे, लेकिन प्राइमरी स्कूल टीचर के तौर पर मेरा अनुभव यही है कि अध्यापन महज एक नौकरी नहीं है। शिक्षा के साथ एक अध्यापक का जुड़ाव न सिर्फ पूरे दिन, वरन उसके बाद भी बना रहता है। मसलन- स्कूल में अध्यापन और फिर लगातार सीखते रहना। लेकिन हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसा नहीं सोचती। यह पश्चिम बंगाल के उत्तरी 24 परगना जिले के घोषपुर जीएसएफपी स्कूल के प्राइमरी टीचर अमलॉन बिष्णु की टिप्पणी है, जिसमें उनकी पीड़ा साफ झलकती है।

मतदाता सूची के हालिया एसआईआर के दौरान बिष्णु और उनके तीन साथियों को बीएलओ का काम मिला था। उनके स्कूल के सात में से चार शिक्षक लगभग छह माह बीएलओ ड्यूटी पर रहे। बिष्णु कहते हैं, "सोचिए, उन दिनों स्कूल किस तरह चला होगा, जब छह कक्षाएं संभालने को महज तीन शिक्षक उपलब्ध थे। ऐसा सिर्फ हमारे साथ नहीं था। प्राथमिक स्कूलों के लगभग 70 प्रतिशत शिक्षक एसआईआर में लगे थे।"

बिष्णु का अनुभव हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा में व्याप्त एक गंभीर बीमारी का बयान है। हम सीखने के नतीजों पर सोचते, पाठ्यक्रम में बदलाव करते और डिजिटल क्लासरूम की बात करते हैं। लेकिन, जिनपर इन उम्मीदों को असल पढ़ाई में बदलने का दारोमदार है, उन्हें अक्सर चुनाव, वोटर लिस्ट सुधार, जनगणना और अन्य प्रशासनिक कामों में झोंक देते हैं। असल में, स्कूल शिक्षक अब शिक्षक न होकर सरकार के लिए सहज सुलभ रिजर्व वर्कफोर्स बन चुके हैं।

कलकत्ता हाईकोर्ट ने इसपर गंभीर सवाल उठाए हैं। कोर्ट की प्रतिक्रिया पश्चिम बंगाल के स्कूल शिक्षा निदेशालय के 3 अगस्त 2026 के उस निर्देश पर आई है, जो कहता है: 'जनगणना का काम इस तरह होना चाहिए कि स्कूल में पढ़ाई-लिखाई पर असर न पड़े। शिक्षक जनगणना का काम स्कूल समय के बाद या वीकेंड पर कर सकते हैं।' जस्टिस कृष्ण राव ने पूछा: 'शिक्षक दिन भर स्कूल में रहते हैं, फिर स्कूल के बाद और रविवार को भी जनगणना ड्यूटी करते हैं, तो उन्हें आराम करने, परिवार और निजी जिंदगी के लिए समय कब मिलेगा?'

कूच बिहार के आरामबाड़ी प्राइमरी स्कूल नंबर III की प्राइमरी टीचर अर्चना मंडल पूछती हैं: "किताबें पढ़ने, फिल्में और डॉक्यूमेंट्री देखने, साथियों के साथ शिक्षा से जुड़े मुद्दों पर चर्चा, यानी उन कामों के लिए उनके पास वक्त कहां है, जिनसे एक शिक्षक की अपनी पेशेवर दक्षता लगातार बेहतर होती है?"

इस मामले में एक जरूरी कानूनी प्रावधान सरकार के लिए सुरक्षा कवच बन जाता है। 'बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' की धारा 27, जो आम तौर पर शिक्षकों को पढ़ाई-लिखाई से इतर कामों में लगाने से रोकती है, वही हर दस साल पर होने वाली जनगणना, आपदा राहत, स्थानीय निकायों, विधानसभाओं और संसदीय चुनावों के लिए कुछ छूट देती है।

लेकिन कानूनन अगर अपवादस्वरूप कहीं कुछ छूट मिलती है, तो उसे प्रशासनिक कामकाज का आम नियम नहीं बनने दिया जा सकता। जब अपवाद ही नियम बनने लगे, तो शिक्षकों की मुख्य भूमिका यानी शिक्षण कार्य का मकसद ही धराशायी हो जाता है, खासकर ऐसे देश में जहां शिक्षक न सिर्फ दुर्लभ संसाधन हैं, बल्कि वितरण भी असमान है।

यूडीआईएसई+2024-25 के आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल मिलाकर छात्र-शिक्षक अनुपात सुधरा है। लेकिन राष्ट्रीय औसत राज्यों के बीच और राज्यों के भीतर मौजूद भारी असमानताओं को ढक देते हैं। चंद स्कूलों में भले ही शिक्षक पर्याप्त हों, तमाम स्कूलों में भारी कमी है, जहां एक ही शिक्षक को कई कक्षाएं संभालनी पड़ती हैं। यानी, समस्या सिर्फ़ शिक्षकों की कुल संख्या नहीं, उनके असमान वितरण की है।

अर्चना मंडल के अनुभव में इसके नतीजे साफ हैं। एसआईआर ड्यूटी के दौरान, उनके स्कूल में बचे दो शिक्षकों को अतिरिक्त कक्षाएं लेनी पड़ीं। उन्हें कई कक्षाओं की जिम्मेदारी संभालनी पड़ीं, टाइम-टेबल गड़बड़ा गया और पढ़ाई-लिखाई, को-करिकुलर एक्टिविटीज़ और खेल-कूद, सभी पर बुरा असर पड़ा। सबसे अहम बात यह कि उनके मुताबिक, बच्चे तीसरे पीरियोडिक असेसमेंट में उम्मीद के मुताबिक ग्रेड-लेवल की अपेक्षित दक्षता हासिल नहीं कर पाए।

इसलिए, अध्यापन के अलावा अन्य काम शिक्षकों के लिए एक परेशानी मात्र नहीं हैं। इसके कारण शिक्षा को होने वाले नुकसान का आकलन किया जा सकता है।

सीजेपी के संस्थापक अभिजीत दिपके महाराष्ट्र के हिंगोली में अपने गांव के एक स्कूल में

इसके कुछ मानवीय पहलू भी हैं। मंडल को जिस बूथ की जिम्मेदारी मिली, उनके घर से 17 किलोमीटर दूर था। मतदाता प्रायः घर पर मिलते नहीं थे, इसलिए बार-बार जाना पड़ता; और जानकारी इकट्ठा करने, पुष्टि में घंटों लग जाते। राजनीतिक दबाव और सुरक्षा की चिंता से शारीरिक-मानसिक थकान और बढ़ गई। स्कूल की मुखिया होने के नाते, उनके पास पढ़ाई-लिखाई की गिरती गुणवत्ता का बेबस दर्शक बने रहने के अलावा विकल्प नहीं था।

इन बातों से एक ही सवाल उठता है: शिक्षक ही क्यों? भारत में पढ़े-लिखे बेरोजगार युवाओं की बहुत बड़ी संख्या है। उनमें से अनेक को ऐसे कामों की ट्रेनिंग दी जा सकती है जो अभी शिक्षक करते हैं। इनके लिए सही प्रशिक्षण और देखरेख की जरूरत होती है, लेकिन ज़्यादातर कामों के लिए किसी ट्रेंड टीचर जैसी खास प्रोफेशनल स्किल की जरूरत नहीं होती। बेशक, जो काम कानूनी तौर पर तय सरकारी अधिकारियों को ही करना है, उन्हें आसानी से आउटसोर्स नहीं किया जा सकता। लेकिन गणना और अन्य सहयोगी कामों के लिए प्रशिक्षित सहायक वर्कफोर्स बनाने की काफी गुंजाइश है।

इसके पीछे एक मजबूत आर्थिक तर्क भी है। राज्य शिक्षकों की भर्ती और उनके प्रशिक्षण तथा उनके खास टीचिंग स्किल्स विकसित करने में काफ़ी संसाधन लगाता है। इस दुर्लभ प्रोफेशनल संसाधन का इस्तेमाल ऐसे कामों के लिए करना, जिन्हें मामूली प्रशिक्षण प्राप्त लोग भी कर सकते हैं, खराब मानव संसाधन प्रबंधन में आता है। ऐसे देश में, जहां स्कूलों में शिक्षकों की खासी कमी है और दूसरी तरफ़ पढ़े-लिखे बेरोजगारों की फौज खड़ी हो, शिक्षकों का ऐसा गैर शैक्षणिक इस्तेमाल समझदारी नहीं है।

इसीलिए हाल ही में सामने आए 'स्कूल ठीक करो' अभियान पर गौर करना जरूरी है। अभिजीत दिपके और कॉकरोच जनता पार्टी ने सार्वजनिक बहस का रुख परीक्षा-गड़बड़ियों से हटाकर सरकारी स्कूलों के सामने मौजूद शिक्षकों, बुनियादी सुविधाओं की कमी और शिक्षा की गुणवत्ता जैसे बड़े संकट की ओर मोड़ने की कोशिश की है।

बांकुरा में यह मामला चिंताजनक मोड़ पर पहुंच गया। खबरों के अनुसार, सीजेपी वॉलंटियर अब्दुल हाफ़िज़ पर 13 अगस्त को उनके घर पर हमला हुआ, क्योंकि उन्होंने करिशुंडा गांव (इंदास पुलिस स्टेशन) में अपने पुराने सरकारी स्कूल की हालत कैमरे में रिकार्ड की थी। हमले में उनके पिता शेख़ मोहम्मद माफ़िक गंभीर रूप से घायल हुए और 15 अगस्त को उनकी मौत हो गई। हमला राजनीतिक कारणों से प्रेरित था या नहीं, जांच का विषय है, लेकिन घटना एक अत्यंत परेशान करने वाली बात की ओर जरूर इशारा करती है: समाज के कुछ वर्गों के लिए, सरकारी स्कूलों में सुधार की मांग भी अब खतरा है!

सवाल लाज़मी है कि शिक्षकों की कमी, उनकी बेतुक तैनाती, कमजोर इंफ्रास्ट्रक्चर और अक्सर प्रशासनिक कामों में झोंकने जैसी समस्याओं को इतने लंबे समय तक पोसा क्यों गया? ऐसा सबूत नहीं, जो बताए कि कोई एक संगठित समूह जान-बूझकर ऐसे हालात का जिम्मेदार है। लेकिन यह भी सही है कि यह सब हमेशा कुछ लोगों को फायदा पहुंचाता है- मसलन वे जो तेजी से बढ़ते निजी शिक्षण बाजार से मुनाफा कमाते हैं, जो सरकारी स्कूलों की नाकामी की जवाबदेही से बचते हैं, और ऐसा प्रशासन जो शिक्षकों को सहज सुलभ मैनपावर मान बैठा है।

उपाय भले ही क्रांतिकारी न हों, समझना होगा कि 'शिक्षक का समय' सरकार के पास मौजूद कोई अतिरिक्त संसाधन नहीं है। इस समय पर पहला हक बच्चों का है। अर्चना मंडल इसे और आसान शब्दों में समझाती हैं। जब एक शिक्षक से एक ही समय में पढ़ाने के साथ-साथ बीएलओ, एसआईआर कार्यकर्ता और अस्थायी प्रशासनिक कर्मचारी के तौर पर काम की उम्मीद की जाती है, तो "नुकसान सिर्फ बच्चों का होता है।"

एक शिक्षक के साथ किसी दूसरे सरकारी कर्मचारी जैसा बर्ताव नहीं किया जा सकता। लेकिन सिस्टम लगातार इसके उलट संदेश देता है: शिक्षक महज एक मशीन के पुर्जे की तरह हैं, जिनका इस्तेमाल सरकार अपनी मर्जी से करती है। समय के साथ, ऐसा सिस्टम न सिर्फ शिक्षकों को कक्षाओं से दूर करता है, उन्हें उस सोच की ओर धकेलता है कि 'पढ़ाना कोई छोटा-मोटा काम है'। यह कहीं ज्यादा गहरी नैतिक कीमत है। अगर हमें समर्पित शिक्षक चाहिए, तो सिस्टम को शैक्षणिक जरूरतों का सम्मान करना होगा। वरना, हमें पूछना होगा: क्या हम अपने शिक्षकों को कुछ और ही बनने के लिए तैयार कर रहे हैं? ■

> जब हम भारत के पढ़े-लिखे बेरोजगारों की बड़ी संख्या को ट्रेनिंग देकर काम पर लगा सकते हैं, तो इन अतिरिक्त कामों के लिए शिक्षकों को क्यों चुना जाए?

संडे नवजीवन
रविवार, 23 अगस्त, 2026 Iwww.navjivanindia.com

# गलत गिनती का महाअभियान

जी.एन. देवी

अबसे नौ महीने बाद बहुप्रतीक्षित और लंबे समय से लंबित जनगणना का देशव्यापी अभियान पूरा हो चुका होगा। 1 अक्तूबर 2026 से यह अभियान पश्चिमी हिमालयी इलाकों- जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में शुरू होगा और फरवरी 2027 तक देश के बाकी हिस्सों को कवर कर लेगा। इसकी समय-सीमा अपने आप में उतनी ही चिंताएं पैदा करती हैं जितनी इस पूरे महाअभियान की रूपरेखा और इसके संभावित नतीजे।

सबसे पहले समय-सीमा की बात। संयुक्त राष्ट्र की सिफारिश है कि हर दशक की जनगणना दशक के शून्य वर्ष (जैसे 2020) में पूरी की जाए और उसके आंकड़े दशक के पहले वर्ष (जैसे 2021) में उपलब्ध करा दिए जाएं। साल के मानकीकरण की यह सिफारिश अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तुलना को आसान बनाने के लिए है। 1871 से लेकर 2011 तक की जनगणना बिना नागा दशक के पहले साल में ही की गईं। कोविड महामारी ने 2021 की जनगणना को बाधित कर दिया था और ऐसे में दो विकल्प थे। या तो इसे 2023 तक पूरा कर लिया जाता जिसे 2021 की जनगणना मान लिया जाता; या फिर 2030 तक टाल दिया जाता। 2026 में जनगणना की मनमानी घोषणा करना और 1 मार्च 2027 को संदर्भ तिथि बनाना उस स्थापित परिपाटी को तोड़ता है, जिसे ठोस सांख्यिकीय कारणों से संस्थागत रूप दिया गया था।

सरकार ने इसका कोई कारण तो नहीं बताया है, लेकिन इस फैसले का एकमात्र तार्किक कारण यही लगता है कि परिसीमन अधिनियम 2002 और पूरक परिसीमन (संशोधन) अधिनियम 2003 कहता है कि संसद सदस्यों की संख्या में वृद्धि पर विचार जनगणना के बाद ही हो सकता है। संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची (प्रविष्टि 69) के अनुसार जनगणना कराना पूरी तरह केन्द्र सरकार का दायित्व है। इस प्रविष्टि में बिना किसी लाग-लपेट सिर्फ एक शब्द लिखा है- 'जनगणना'। जाहिर है, इस विषय पर सारे अधिकार अकेले केन्द्र के पास हैं।

जनगणना अधिनियम 1948 भारत में जनगणना कराने का कानूनी आधार प्रदान करता है। यद्यपि यह अधिनियम केन्द्र सरकार को अभियान का कर्ता-धर्ता बनाता है, लेकिन इसे अमल में उतारने में राज्य सरकारें प्रशासनिक सहयोग देती हैं। भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय केन्द्रीय गृह मंत्रालय से संबद्ध है और इसके निर्णयों पर सुप्रीम कोर्ट सहित किसी भी अदालत या संसद तक में सवाल नहीं उठाया जा सकता।

मतलब साफ है, अगर आपको इस प्रक्रिया पर कोई आपत्ति है, तो आप कुछ नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, जातिगत गणना-जिसे सरकार ने जनगणना प्रक्रिया में शामिल करने का वादा किया था-ने ऐसा रूप ले लिया है जो इस पूरी प्रक्रिया को निरर्थक बना देगा। पिछली जातिगत गणना भारत के बंटवारे से पहले 1931 में हुई थी। इस बार जाति का सवाल 'एससी/एसटी/अन्य' के प्रारूप में है, जो पहले एससी और एसटी को अलग करता है और 'अन्य' को एक खुले विकल्प के तौर पर छोड़ देता है। उत्तरदाता ड्रॉप-डाउन मेनू या तय विकल्प के बिना अपनी मर्जी से इसे भर सकता है। इससे होगा यह कि हजारों-हजार जातियों के नाम आएंगे, जिनका सांख्यिकीय वर्गीकरण असंभव होगा और अंततः वे डिजिटल कचरा बनकर रह जाएंगे।

*

विमुक्त जनजातियों और घुमंतू समुदायों का हश्र और भी बुरा होने वाला है। इन्हें अंग्रेज सरकार ने 1871 के 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' के तहत 'जन्मजात अपराधी' करार दिया था। उन्हें 'बस्तियों' के नाम पर खुली जेलों में रखा गया और सड़कें-रेलवे लाइनें बिछाने में उनसे बेगारी कराई गई। अंग्रेजों ने तमाम विधायी संशोधनों के जरिये कई समुदायों को इस अपमानजनक दायरे में धकेल दिया और 1931 की जनगणना के आधार पर 1991 में इनकी आबादी लगभग 5 करोड़ आंकी गई थी।

इससे जुड़ी औपनिवेशिक अधिसूचनाएं 1950 के दशक के शुरू में वापस ले ली गईं (इसलिए इन्हें 'विमुक्त' कहा गया)। इस तरह, 'जन्मजात अपराधी' का कलंक बेशक कानूनन खत्म हो गया, लेकिन उनके प्रति पुलिस का पूर्वाग्रही सलूक जारी रहा। जनगणना के दूसरे चरण की 40 सवालों वाली प्रश्नावली में विमुक्त जातियों की गिनती को अद्यतन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। जाति का दो-स्तरीय सवाल उन्हें पहले एससी/एसटी या 'अन्य' चुनने और फिर खुद को नट, मदारी, बंजारा आदि के रूप में दर्ज करने का रास्ता देगा, लेकिन इससे उनकी जनसांख्यिकीय ताकत या विविधता की तस्वीर साफ नहीं हो पाएगी।

अगर सवालों की संख्या 2011 की जनगणना के 29 से बढ़ाकर 40 की जा सकती थी, तो एक और सवाल जोड़ देने से विमुक्त जातियों के लिए सही ढंग से अपनी पहचान दर्ज करना संभव हो पाता। ऐसा करके शायद हम इन समुदायों के साथ होने वाले सामाजिक भेदभाव को कम करने की दिशा में पहला सार्थक कदम उठा सकते थे।

इससे भी पेचीदा मुद्दा धर्म से जुड़े आंकड़ों का है। आदिवासियों और घुमंतू समुदायों के बीच काम करते हुए मेरी मुलाकात अक्सर ऐसे परिवारों से हुई, जिनके सदस्य अलग-अलग धर्मों को मानते हैं। कालबेलिया, मदारी, गरुड़ी, बहुरूपिया और गड़िया-लोहार परिवारों में यह सामान्य बात है कि कुछ सदस्य खुद को मुस्लिम बताएं और कुछ हिन्दू। ये समुदाय गुजरात, राजस्थान और कश्मीर के सीमावर्ती इलाकों में अधिक आम हैं। ऐसा ही पूर्वोत्तर के सीमावर्ती समुदायों में भी देखा जाता है। यानी, विमुक्त जनजातियों में द्वि-धार्मिक पहचान आम बात है। लेकिन इस जनगणना में धर्म से जुड़ा सवाल उत्तरदाता को केवल एक धर्म या किसी को भी न चुनने के लिए मजबूर करता है, जिससे सभी द्वि-धार्मिक या बहु-धार्मिक व्यक्तियों की गलत गिनती होना तय है।

धर्म जनगणना का सवाल भारत में धार्मिक प्रथाओं की जमीनी हकीकत के प्रति नासमझी को दिखाता है, खास तौर पर जनजातीय समुदायों के मामले में। मानवशास्त्रीय अध्ययन बताते हैं कि वे मंदिर या ग्रंथ आधारित धर्मों का पालन नहीं करते। यद्यपि कुल जनजातीय आबादी आज भी तकरीबन 9 फीसद (13 करोड़ के आसपास) है, फिर भी उन्हें हमेशा हिन्दू और कुछ मामलों में ईसाई के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाता है।

2011 की जनगणना में 121 करोड़ की कुल आबादी दर्ज की गई थी, जिसमें 96.62 करोड़ हिन्दू, 17.22 करोड़ मुस्लिम, 2.78 करोड़ ईसाई, 2.08 करोड़ सिख, 0.8 करोड़ बौद्ध, 0.4 करोड़ जैन और 0.8 करोड़ 'अन्य' थे। इनके अलावा, 28 लाख ने किसी धर्म का जिक्र नहीं किया था। अंतिम दो श्रेणियां मिलकर 1 करोड़ से ज्यादा हो जाती हैं जबकि कुल जनजातीय आबादी 13 करोड़ है। क्या इन लोगों को एनुमरेटर्स की मर्जी पर हिन्दू या ईसाई जैसी श्रेणियों में डाल दिया जाएगा? क्या इससे संविधान प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का कोई मतलब रह जाएगा?

*

2011 की जनगणना में नागरिकों द्वारा दर्ज कराई गई 1,369 'मातृभाषाओं' को महज 121 'भाषाओं' में सीमित कर दिया गया। जनगणना का नियम यह था कि किसी बोली को अलग भाषा तभी माना जाएगा, जब उसे बोलने वाले कम-से-कम 10,000 लोग हों- यह अपने आप में नितांत अवैज्ञानिक पैमाना है जिसे कोई गंभीर भाषावैज्ञानिक स्वीकार नहीं करता। दूसरी तरफ, विडंबना यह रही कि करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाने वाली बड़ी भाषाओं को भी स्वतंत्र दर्जा देने के बजाय किसी प्रमुख भाषा का उप-समूह बनाकर दिखा दिया गया। जैसे, 5 करोड़ से अधिक लोगों की मातृभाषा भोजपुरी को हिन्दी का ही हिस्सा बना दिया गया। अकेले हिन्दी में ऐसी 55 समृद्ध भाषाओं को समाहित कर लिया गया। जनगणना नागरिकों से उनकी भाषाई पहचान क्यों छीनना चाहती है? इन सांस्कृतिक बारीकियों से छेड़छाड़ जनसांख्यिकी को गलत तरीके से पेश करना है।

ऐसी प्रश्नावली से बचते हुए जो भारतीय आबादी की अधिक सूक्ष्म और सच्ची तस्वीर पेश कर सकती थी (जैसे जाति, जनजाति और भाषा की सटीक गिनती), ताजा जनगणना पूरे अभियान को कुछ निरर्थक और आपत्तिजनक सवालों के तले दबा रही है। बैंक खातों की संख्या, आधार विवरण और टेलीफोन नंबर से जुड़े सवालों का भला क्या मतलब, जबकि सरकार के पास यह डेटा पहले से मौजूद है? जीवनसाथी का नाम पूछने का मकसद क्या है? बेशक, जनगणना को कोई भी सवाल पूछने की कानूनी मंजूरी है, लेकिन नागरिकों की भी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताएं हैं। क्या यह डेटा अंतर-धार्मिक विवाहों के पैमाने का आकलन करने के लिए जुटाया जा रहा है? और क्या होगा अगर यह डेटा धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ नफरती अभियान चलाने वाले कट्टरपंथियों के हाथ लग जाए? ■

जी. एन. देवी प्रख्यात सांस्कृतिक चिंतक हैं

फोटो: गेटी इमेजेज

श्रीनगर में घर-घर जाकर आवश्यक जानकारियां एकत्र करते जनगणनाकर्मी

जाति गणना की खानापूर्ति, विमुक्त-घुमंतू जातियों की अनदेखी और बहु-धार्मिक पहचान को नकारने वाली यह प्रक्रिया असल तस्वीर छिपाने का जरिया बन सकती है। अनावश्यक निजी जानकारियों पर सवाल भी बेतुके क्योंकि ये डेटा पहले से ही दर्ज हैं

# मुफ़्त कोचिंग समाधान नहीं है, माननीय प्रधानमंत्री जी

## उच्च शिक्षा और नौकरी की सुरक्षा के लिए रास्तों का निर्माण प्राथमिकता; मुफ़्त कोचिंग का आश्वासन टूटे शरीर पर मरहम जैसा

अजीत रानाडे

लाल किले की प्राचीर से स्वतंत्रता दिवस के संबोधन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक बड़ी घोषणा की। उन्होंने कहा कि सरकार देश के डिजिटल सार्वजनिक बुनियादी ढांचे, योग्य शिक्षकों और आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल कर एक व्यापक नेटवर्क तैयार करेगी। इसका मकसद उन गरीब लेकिन प्रतिभावान परिवारों पर वित्तीय बोझ कम करने के लिए मुफ्त ऑनलाइन कोचिंग उपलब्ध कराना है, जो लाखों रुपये की फीस नहीं चुका सकते। अच्छे शिक्षकों और स्तरीय अध्ययन सामग्री तक मुफ्त पहुंच निश्चित तौर पर असमानता की खाई को पाट सकती है। मगर यह घोषणा अपने आप में एक बुनियादी सवाल भी खड़ा करती है: आखिरकार कोचिंग हमारे समाज के लिए इतनी अपरिहार्य बनी ही क्यों?

भारत में बोतलबंद पानी का धंधा और कोचिंग उद्योग बिल्कुल एक-सी कहानी बयां करते हैं। जब सरकारी तंत्र जनता को गुणवत्तापूर्ण और भरोसेमंद सेवाएं देने में नाकाम रहता है, तो निजी उद्योग उस खाली जगह पर काबिज हो जाता है। लोग बोतलबंद पानी इसलिए खरीदते हैं क्योंकि उन्हें नल से आने वाले पानी पर भरोसा नहीं होता। ठीक वैसे ही, वे कोचिंग पर इसलिए पैसे खर्चते हैं क्योंकि उन्हें कतई यकीन नहीं होता कि सामान्य स्कूलों की पढ़ाई उनके बच्चों को उच्च शिक्षा और रोजगार के दरवाजों तक पहुंचा पाएगी। निजी ट्यूशन के पीछे कुछ और भी कारण हो सकते हैं, लेकिन भारत में इसके इस कदर हावी होने की वजह औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की बुनियादी कमजोरियों में ही छिपी है।

आंकड़े इस हकीकत को पूरी तरह बेपर्दा करते हैं। 'इंडिया फोरम' में राहुल वर्मा के एक हालिया आलेख में उद्धृत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के आंकड़ों के मुताबिक, स्कूल जाने वाले 27 फीसद बच्चे निजी कोचिंग लेते हैं। सीनियर सेकेंडरी स्तर पर तो यह आंकड़ा बढ़कर 37 फीसदी तक पहुंच जाता है।

दूसरी तरफ, शिक्षा की सालाना स्थिति रिपोर्ट (असर) लगातार बुनियादी तालीम में गंभीर खामियों की ओर इशारा कर रही है। वर्ष 2024 में सरकारी स्कूलों के कक्षा 5 के केवल 44.8 फीसद बच्चे ही कक्षा 2 की पाठ्यपुस्तक पढ़ पाने में सक्षम थे, जबकि एक-तिहाई से भी कम बच्चे भाग (डिवीजन) का बुनियादी सवाल हल कर सके। नतीजतन, हमारे सामने एक अजीबोगरीब विरोधाभास खड़ा है- जहां एक तरफ बुनियादी तालीम का ढांचा पूरी तरह खोखला है, वहीं दूसरी तरफ प्रवेश परीक्षाएं पास कराने वाला एक बेहद चालाक और साधन-संपन्न उद्योग फल-फूल रहा है।

अच्छे शिक्षकों और स्तरीय अध्ययन सामग्री तक मुफ़्त पहुंच असमानता की खाई को पाट सकती है। मगर यह घोषणा बुनियादी सवाल भी खड़ा करती है: आखिरकार कोचिंग हमारे समाज के लिए इतनी अपरिहार्य बनी ही क्यों?

'डमी स्कूलों' का बढ़ता चलन इस विद्रूपता को और गहरा करता है। छात्र कागजों पर तो नियमित स्कूल में नामांकित रहते हैं, लेकिन उनका असली वक्त जेईई या नीट के कोचिंग संस्थानों में बीतता है। स्कूल महज औपचारिकता बनकर रह गए हैं और कोचिंग सेंटर पढ़ाई का असली ठिकाना बन चुके हैं। छात्र रोजाना आठ से पंद्रह घंटे नीट की तैयारी में खपा देते हैं, मगर बायोलॉजी के बुनियादी प्रैक्टिकल में भी लड़खड़ा जाते हैं। सवालों के पैटर्न को रट लेना और प्रवेश परीक्षा के पैटर्न का अभ्यास कर लेने का मतलब यह कतई नहीं है कि छात्र ने विषय की मूलभूत समझ भी हासिल कर ली है।

इस अंधी दौड़ का दूसरा बड़ा कारण सीटों का भारी अकाल है। इस साल जेईई मेन के लिए 16 लाख से अधिक अभ्यर्थियों ने पंजीकरण कराया। इनमें से केवल शीर्ष 2.5 लाख छात्र ही जेईई एडवांस्ड देने के पात्र होंगे, और उनमें से भी एक बहुत छोटा हिस्सा आखिरकार आईआईटी की दहलीज लांघ पाएगा। मेडिकल कॉलेजों, प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों से लेकर सरकारी नौकरियों के मामले में भी अवसरों की यही दमघोंटू तंगहाली है।

जब लाखों दावेदारों के बीच मुट्ठी भर बेशकीमती अवसर बांटने हों, तो परीक्षा ज्ञान की परख नहीं रह जाती। वह अवसरों की राशनिंग का औजार और नौजवानों को निकाल बाहर करने यानी 'सामूहिक छंटनी' का क्रूर जरिया बन जाती है। कोचिंग पर दोगुना पैसा फूंक देने से देश में आईआईटी की सीटें या सरकारी पद दोगुने नहीं हो जाते। व्यक्तिगत तौर पर हर परिवार की यह चाहत वाजिब है कि उसका बच्चा होड़ में आगे निकले, लेकिन सामूहिक तौर पर देखें तो कतार में सिर्फ थोड़ा आगे खिसकने की खातिर देश का अथाह पैसा, समय और नौजवानों की असीम ऊर्जा खाक हो रही है।

यही वजह है कि परीक्षाओं की शुचिता और विश्वसनीयता इतनी अहम हो जाती है। जब एक ही इम्तिहान किसी का करियर बना या बिगाड़ सकता है, तो उसकी निष्पक्षता एक अनिवार्य सार्वजनिक भरोसा बन जाती है। एक अभ्यर्थी 50 में से 1 या 100 में से 1 होने की कठिन चुनौती को भी स्वीकार कर सकता है, बशर्ते उसे पक्का यकीन हो कि हर कोई समान नियमों के तहत एक ही परीक्षा दे रहा है। लेकिन पर्चा लीक होने की एक घटना उस पूरे सामाजिक विश्वास को चकनाचूर कर देती है और भारत ऐसी त्रासदियों को बार-बार झेलता रहा है।

इस व्यवस्था की एक और गड़बड़ी है। करोड़ों अभ्यर्थियों को छांटने की मजबूरी मानकीकृत और मशीनों से जांची जा सकने वाली बहुविकल्पीय परीक्षाओं को बढ़ावा देती है। ऐसी परीक्षाएं वस्तुनिष्ठ और एक बड़े स्तर पर आसानी से लागू करने की दृष्टि से आसान तो होती हैं, लेकिन जब पूरा भविष्य ही ऐसे इम्तिहानों पर टिक जाए, तो पूरी शिक्षण व्यवस्था महज 'टेस्ट प्रेप' बनकर रह जाती है। ज्ञान सिमटकर पैटर्न पहचानने तक सीमित हो जाता है और चार में से तीन गलत विकल्पों को तेजी से छांट देने की चालाकी को ही वास्तविक 'सीखना' मान लिया जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 ने रटंत प्रणाली से हटकर समझ और दक्षता आधारित शिक्षा की ओर बढ़ने का दावा किया, लेकिन जमीनी समस्याएं जस की तस हैं। जैसा कि इंडिया फोरम के विश्लेषण में बताया गया है-जब आकांक्षाओं के अनुपात में संस्थागत क्षमता का विस्तार नहीं होता, तो प्रवेश परीक्षाएं केवल अंतिम मूल्यांकन न रहकर माध्यमिक शिक्षा का मुख्य मार्गदर्शक सिद्धांत बन जाती हैं।

विडंबना यह है कि खुद सरकारें भी कोचिंग की इस अंधी दौड़ में भागीदार बन चुकी हैं। महाराष्ट्र का स्टेट इंस्टीट्यूट फॉर एडमिनिस्ट्रेटिव करियर्स मुफ्त में यूपीएससी की फुल-टाइम कोचिंग देता है। केन्द्र समेत कई अन्य राज्य भी ऐसी योजनाएं चला रहे हैं। वंचित तबके के मेधावी छात्रों के लिए मुफ्त कोचिंग फौरी तौर पर एक राहत जरूर हो सकती है, लेकिन यह गैर-बराबरी वाली अंधी दौड़ की तात्कालिक भरपाई भर है; उस सड़े-गले तंत्र का मुकम्मल इलाज नहीं जो इस गैर-बराबरी को पैदा करता है।

कोचिंग की यह बीमारी केवल भारत तक सीमित नहीं। जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में भी, जहां का स्कूली ढांचा बेहद मजबूत है, 'क्रैम स्कूलों' की जड़ें जमाए संस्कृति मौजूद है। जापान तो गणित, रीडिंग और विज्ञान में ओईसीडी के औसत से कहीं बेहतर प्रदर्शन करता है। इसका मतलब यह है कि जब संभ्रांत संस्थानों के लिए होड़ अंधी होगी, तो कोचिंग का उदय तय है। इसके उलट, फिनलैंड राष्ट्रीय स्तर की ऐसी तनावपूर्ण परीक्षाओं पर जोर नहीं देता, जबकि जर्मनी पारंपरिक विश्वविद्यालयों के समानांतर ही प्रतिष्ठित व्यावसायिक और अप्रेंटिसशिप के रास्ते मुहैया कराता है। सबक साफ है: सिर्फ अच्छे सरकारी स्कूल कोचिंग को खत्म नहीं कर सकते; युवाओं को शिक्षा, कौशल, सम्मान और रोजगार के कई विश्वसनीय और समानांतर रास्ते चाहिए।

असली सुधार का एजेंडा यहीं से शुरू होता है। आम स्कूलों और विश्वविद्यालयों को साधन-संपन्न बनाएं। सिर्फ संस्थाओं की संख्या बढ़ाने के बजाय स्तरीय शिक्षण का विस्तार करें। परीक्षाएं ऐसी हों जो कोचिंग की बाजीगरी के बजाय विषय की गहरी समझ को जांचें, ताकि किसी एक दुपहरी का इम्तिहान जिंदगी और मौत का फैसला न बन जाए। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाएं। और सबसे जरूरी- व्यापक पैमाने पर आकर्षक और सुरक्षित रोजगार पैदा करें, ताकि करोड़ों भारतीय नौजवान मुट्ठी भर सरकारी नौकरियों के लिए जानलेवा भगदड़ मचाने को मजबूर न हों।

भारत का डिजिटल बुनियादी ढांचा करोड़ों बच्चों तक मुफ्त कोचिंग तो पहुंचा सकता है, लेकिन असली कामयाबी ऐसा शिक्षा और रोजगार तंत्र बनाने में होगी, जहां किसी भी परिवार को कोचिंग का सहारा लेने पर पैसे न खरचने पड़ें। ■

अजीत रानाडे जोने-माने अर्थशास्त्री हैं।
साभार: द बिलियन प्रेस

15 अगस्त को लाल किले की प्राचीर से दिए गए भाषण के दौरान ही प्रधानमंत्री ने मुफ़्त कोचिंग का विचार रखा

# नरक की ओर जाते रास्ते

## शर्मिंदगी का कारण बने 'स्पेस टेक्नोलॉजी से बने' जैसे दावों और धूमधाम के साथ शुरू किए गए भारत के नए हाईवे

**रश्मि सहगल**

पिछले साल 13 जुलाई को 63 किलोमीटर लंबे लखनऊ-कानपुर एक्सप्रेस-वे का उद्घाटन भाजपा के तीन दिग्गजों-उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह और सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री नितिन गडकरी-द्वारा बड़े धूमधाम से किया गया था। लेकिन तेरह दिन बाद ही, यानी 26 जुलाई को ही 4,300 करोड़ रुपये की लागत से बने इस एक्सप्रेस-वे पर दरारें उभर आईं।

मूसलाधार बारिश ने डामर की परत उखाड़ फेंकी और सड़क धंस गई। गीले हिस्सों को सुखाने के लिए पेडस्टल पंखे लगाए गए। भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) ने आनन-फानन में कई 'सुधारात्मक कदम' उठाएः मरम्मत पूरी होने तक टोल वसूली रोक दी गई, निर्माण कंपनी पीएनसी इंफ्राटेक और तीन प्रोजेक्ट इंजीनियरों को निलंबित कर दिया गया। सोशल मीडिया पर आए वीडियो नुकसान की भयावहता दिखा रहे थे, जहां भारी मशीनें लगातार काम में जुटी थीं और सबसे ज्यादा प्रभावित हिस्सों में यातायात को एक ही लेन तक सीमित कर दिया गया था। एक परेशान यात्री ने कहा, 'जब हर रोज हमारी जान जोखिम में पड़ रही है, तो टोल वसूली रोकने या इस परियोजना की विफलता की जांच के लिए आईआईटी खड़गपुर को बुलाने का क्या फायदा?'

16 अगस्त 2026 को उधमपुर-चेनानी सेक्टर में चार लेन वाले जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग के दरमथल-देवल हिस्से पर भारी भूस्खलन से यातायात ठप हो गया। जाम में फंसे बारामूला के फल व्यापारी गुलाम अली ने सवाल उठाया, 'जब हम एक ही लेन का इस्तेमाल कर सकते हैं, तो चार लेन का क्या फायदा?'

17 अगस्त को, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 36,000 करोड़ रुपये की लागत वाले 594 किलोमीटर लंबे गंगा एक्सप्रेस-वे के उद्घाटन के महज साढ़े तीन महीने बाद, उसमें दस मीटर गहरा गड्ढा हो गया। वहीं 12,000 करोड़ रुपये की लागत से बना 213 किलोमीटर लंबा दिल्ली-देहरादून एक्सप्रेस-वे, जिसके बारे में दावा किया गया था कि इसमें अत्याधुनिक जापानी तकनीक का इस्तेमाल हुआ है जो 100 साल से ज्यादा चलेगी, महज दो महीने में ही धंसने लगा और गड्ढों में तब्दील हो गया।

प्रधानमंत्री को टैग करते हुए एक यात्री ने 'एक्स' (ट्विटर) पर लिखा, 'यह दिल्ली-देहरादून एक्सप्रेस-वे है, जिसका उद्घाटन आपके द्वारा (19 अप्रैल को) किया गया था... इसे बनने में करीब पांच साल लगे, लेकिन पहली बारिश भी नहीं झेल पाया। इसकी दयनीय स्थिति देखिए। लोग एक्सप्रेस-वे के बीच में खड़े होकर तेज रफ्तार गाड़ियों को इन बड़े गड्ढों से सचेत करने को मजबूर हैं, जो जानलेवा साबित हो सकते हैं। भारी टोल वसूलने के बावजूद निजी ठेकेदार कैसी सड़क बना रहे हैं?'

तीर्थयात्रियों की यात्रा सुगम बनाने के नाम पर गढ़वाल के संवेदनशील पहाड़ी रास्तों को 12 मीटर चौड़े डबल लेन हाईवे में बदलने वाली 890 किलोमीटर की बहुप्रचारित 'चार धाम परियोजना' को भूस्खलन के खतरों को लेकर विशेषज्ञों की चेतावनियों के बावजूद आगे बढ़ाया गया। भूस्खलन के स्थानों को मैप करने के एक हालिया सर्वेक्षण में पाया गया कि ऋषिकेश-बद्रीनाथ मार्ग पर लगभग हर दो किलोमीटर पर भूस्खलन होता है। डायनामाइट के अंधाधुंध इस्तेमाल से होने वाले भू-धंसाव के कारण न केवल धार्मिक पर्यटक, बल्कि स्थानीय लोग भी गंभीर खतरे में हैं। स्थानीय लोगों का कहना है कि जहां कभी बरसात के मौसम का मतलब पत्थरों का मामूली गिरना और कभी-कभार भूस्खलन हुआ करता था, वहीं अब ऐसा लगता है मानो पूरे के पूरे पहाड़ ही ढह रहे हैं।

एक और 'शानदार प्रोजेक्ट' कहे जाने वाले मुंबई-दिल्ली एक्सप्रेस-वे को भी लगातार देरी का सामना करना पड़ा है, जिसमें घटिया निर्माण बड़ी चिंता है। सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय को ठेकेदारों के खिलाफ तब कार्रवाई के लिए मजबूर होना पड़ा, जब एक वायरल वीडियो में पैकेज 9 के पास नवनिर्मित हिस्से पर सड़क के अप्रत्याशित रूप से धंसे होने के कारण कारें हवा में उछलती और जमीन पर गिरकर बुरी तरह क्षतिग्रस्त होती दिखीं।

फरवरी 2026 में एक कैरिजवे खुलने के बाद, अधिकारियों ने क्रमशः 4 किमी और 3 किमी के दो हिस्सों में सड़क की सतह की खराबी (जिसमें गड्ढे और दरारें शामिल हैं) की पहचान की, जिससे परियोजना की गुणवत्ता और निगरानी पर नए सवाल खड़े हो गए। इस पर आधिकारिक प्रतिक्रिया थीः 'सड़क की सतह को समतल करने, ड्राइविंग की गुणवत्ता सुधारने और सुरक्षित और निर्बाध यातायात सुनिश्चित करने के लिए प्रभावित हिस्सों पर माइक्रो-मिलिंग का काम किया जा रहा है।'

अटल बिहारी वाजपेयी सेवरी-न्हावा शेवा अटल सेतु, जिसे मुंबई ट्रांस हार्बर लिंक के नाम से जाना जाता है, का क्या हाल है? 'देश का सबसे लंबा समुद्री पुल' नवी मुंबई में उल्वे की ओर जाने वाले निकास मार्ग पर दरारें दिखाई देने के बाद जांच के घेरे में है।

केरला में, राज्य के सबसे व्यस्त राजमार्ग गलियारों में से एक, 17 किलोमीटर लंबे एडप्पल्ली-अरूर एनएच 66 बाईपास के किनारे सर्विस रोड की खस्ताहाल स्थिति को लेकर एनएचएआई को तीखी आलोचना का सामना करना पड़ रहा है। सबसे ज्यादा प्रभावित हिस्सा - एडप्पल्ली ओवरब्रिज से एडप्पल्ली जंक्शन और पलारीवट्टोम - और भी खराब हो गया है क्योंकि एनएचएआई का फ्लाईओवर-सह-अंडरपास प्रोजेक्ट एक साल से अधिक समय से घिसट रहा है।

एक वरिष्ठ ट्रैफिक पुलिस अधिकारी ने एनएचएआई से कहा, 'टोल वसूलने वाली एजेंसी ने मरम्मत का काम नहीं किया, जबकि मुख्य मार्ग पर बने गड्ढों और वैटिला रेलवे ओवरब्रिज पर असमान विस्तार जोड़ों के कारण भारी ट्रैफिक जाम लग रहा है। यहां तक कि पलारीवट्टोम फ्लाईओवर के ऊपर भी गड्ढों की भरमार है।'

*

नितिन गडकरी ने दावा किया था कि 'अंतरिक्ष तकनीक' की मदद से भारत की सड़कें 2024 तक अमेरिका जैसी हो जाएंगी। 2014 के बाद से, उन्होंने राष्ट्रीय राजमार्ग नेटवर्क के 0.91 लाख किमी से बढ़कर 1.46 लाख किमी तक विस्तार की निगरानी की है। जाहिर तौर पर, ये हाई-स्पीड हाईवे कॉरिडोर 2047 तक भारत को 30 खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने में ईंधन का काम करेंगे। क्या यही एनएचएआई को मिल रहे भारी बजट का कारण है? वित्त वर्ष 2025-26 में, इसे 2,38,384 करोड़ रुपये का बजटीय आवंटन प्राप्त हुआ।

कैग ने जुर्माने में कटौती करके और रियायत समझौतों से भटककर ठेकेदारों को अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए बार-बार एनएचएआई को कटघरे में खड़ा किया है। टोल नियमों के उल्लंघन के कारण सड़क पर चलने वालों को 180 करोड़ रुपये से अधिक का नुकसान हुआ। इससे भी गंभीर बात यह है कि एनएचएआई के अधिकारी कथित तौर पर पसंदीदा फर्मों को अनुबंध देने के एवज में सैकड़ों करोड़ रुपये के फर्जी सर्विस-टैक्स रिफंड में लिप्त रहे।

हाल ही में मीडिया से बातचीत में गडकरी बैकफुट पर दिखे जब उन्होंने कहा, 'भारत में 72 लाख किलोमीटर सड़कें हैं। मैं केवल 1.5 लाख किलोमीटर राष्ट्रीय राजमार्गों के लिए जिम्मेदार हूं। अगर समस्या मेरी सड़क में है, तो मैं ठेकेदार या अधिकारी को नहीं बख्शूंगा। यदि गलती अनजाने में हुई हो तो मैं माफ कर देता हूं। यदि धोखाधड़ी है, तो मैं दंडित करता हूं।' उन्होंने मानाः 'हर साल 4.80 लाख सड़क दुर्घटनाएं होती हैं और 1.8 लाख मौतें होती हैं, जो शायद दुनिया में सबसे ज्यादा हैं। इनमें से 66.4 फीसद मौतें 18 से 45 वर्ष के आयु वर्ग में होती हैं। इससे जीडीपी में 3 फीसद का नुकसान होता है। युवा डॉक्टरों, इंजीनियरों और प्रतिभाशाली युवाओं को खोना देश के लिए बड़ी क्षति है।'

वह 2030 तक सड़क दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों को आधा करने के वादे को कैसे पूरा कर पाएंगे? नेशनल हाईवेज एंड इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड जैसी एजेंसियों पर जिम्मेदारी मढ़ने से क्या होगा, जब ये सभी या तो उनके मंत्रालय के तहत काम करती हैं या एनएचएआई के साथ मिलकर काम करती हैं? अंततः जवाबदेह कौन है? हालांकि निजी ठेकेदारों के खिलाफ कार्रवाई के कुछ मामले सामने आए हैं, लेकिन सरकारी अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई महज दो मामलों में शुरू की गई है।

गडकरी ने हाल ही में राज्यसभा को बताया कि पिछले पांच सालों में एनएचएआई द्वारा बनाई गई सड़कों, पुलों और राजमार्गों पर संरचनात्मक क्षति या ढहने की 55 घटनाएं दर्ज की गईं। इनमें से 40 निर्माण के दौरान और शेष काम पूरा होने के बाद हुईं। इसपर कांग्रेस के दिग्विजय सिंह ने सवाल किया कि इसके लिए कौन जवाबदेह है।

इस लेखाजोखा में मंत्रालय के तहत अन्य एजेंसियों द्वारा क्रियान्वित परियोजनाओं के साथ-साथ राज्य लोक निर्माण विभागों और अन्य केन्द्रीय निकायों की परियोजनाओं से जुड़ी घटनाएं शामिल नहीं। लेकिन नवंबर 2023 में उत्तराखंड के सिल्क्यारा सुरंग हादसे का क्या जिसमें 41 मजदूर 17 दिनों तक फंस रहे थे? या उत्तराखंड में टिहरी हाइड्रो डेवलपमेंट कॉरपोरेशन की विष्णुगाड़-पीपलकोटी जलविद्युत परियोजना की चमोली सुरंग में 13 अगस्त 2026 को हुए हादसे का क्या, जिसमें नौ मजदूरों की मौत हो गई और दो अब भी लापता हैं? ■

रश्मि सहगल वरिष्ठ पत्रकार एवं स्तंभकार हैं

फोटो: गेटी इमेजेज

उद्घाटन के साढ़े तीन महीने बाद गंगा एक्सप्रेस-वे पर बना गहरा गड्ढा और उद्घाटन के 13 दिन बाद लखनऊ-कानपुर एक्सप्रेस-वे पर पड़ी दरारें (ऊपर) और गीली जगहों को सुखाते हुए पेडस्टल पंखे एवं दरारों के चारों ओर लगी सावधानी वाली टेप

**भारी टोल वसूलने के बावजूद सड़कों पर जानलेवा गड्ढे हैं। तेज रफ्तार गाड़ियों को हादसों से बचाने के लिए लोगों को खुद एक्सप्रेस-वे के बीच में खड़े होकर चेतावनी देनी पड़ रही है। यह लोगों की जिंदगी से खिलवाड़ है**

# उत्तराखंड की घटना द्विज राष्ट्रवाद का आईना

## अभी शतक पूर्ण किए संगठन का लक्ष्य द्विज राष्ट्र बनाना है। वह संगठन जो हिसाब देना शान के खिलाफ समझता है

**मीनाक्षी नटराजन**

उत्तराखंड में हाल में एक शुद्धिकरण की घटना घटी। एक राष्ट्रीय नेता के कार्यक्रम के बाद अतिदक्षिणपंथी संगठन ने उसको अंजाम दिया। राज्यसभा के सभापति सी.पी. राधाकृष्णन और सत्तारूढ़ दल के पूर्व अध्यक्ष जेपी नड्डा ने जांच का आश्वासन जरूर दिया। यह भी कहा कि वह और उनकी पार्टी छुआछूत और भेदभाव को नहीं मानते। शुद्धिकरण करने वाले संगठन का उनसे कोई संबंध नहीं है। यहां तक सब दुरुस्त लगता है 'सो फार, सो गुड', पर बात इतनी सीधी भी नहीं।

सवाल यह है कि पिछले दो दशकों में ऐसे अनेक संगठन तैयार हुए हैं जो खुलेआम मानवतावादी और संवैधानिक मूल्यों की धज्जियां उड़ाते हैं। स्वाभाविक तौर पर उग्र घटनाओं के पैरोकार हैं। वे इससे पीछे नहीं हटते। घटना पर कभी शर्मिंदा नहीं होते, उल्टे सीना ठोककर जिम्मेदारी लेते हैं। इन घटनाओं में हत्या, हत्या की धमकी, निम्न स्तर की भाषा का इस्तेमाल शामिल है। भले आज हुक्मरानों को जंतर-मंतर की भाषा भद्दी लगी, पर मुड़ कर देखें तो यह उन्हीं के कथित फ्रिंज द्वारा बरसों पहले इजाद किया गया शब्दकोश है।

इन फ्रिंज संगठनों का संचालन कौन करता है? किस विचार वातावरण में यह संगठन पनपते हैं? कौन इनको प्रोत्साहित करता है। क्या इन संगठनों को तब प्रोत्साहन नहीं मिलता जब किसी हिंसक घटना के बाद किसी पर कभी कार्रवाई नहीं होती। दाभोलकर, पंसारे, गौरी लंकेश की हत्या में शामिल संगठनात्मक संस्थागत सोच की कभी छानबीन नहीं हुई। किसी को सजा नहीं हुई, बल्कि सत्तारूढ़ों की चुप्पी, उदासीनता और संरक्षण से अतिवादी संगठनों को पल्लवित होने की उर्वर भूमि मिली। इसी का परिणाम है कि फ्रिंज को मुख्यधारा होने में वक्त नहीं लगा। फ्रिंज बाकायदा मंत्री के ओहदे तक पा गए। मंत्री होने के बाद भी अश्लील टिप्पणियां छूटीं नहीं। जब कश्मीर का विशेष संविधान प्रदत्त दर्जा छूटा तो कश्मीरी महिलाओं की वैवाहिक उपलब्धता का शर्मनाक बखान सामने आया।

बहुत संभव है कि उत्तराखंड की घटना किसी स्वयंभू अतिवादी संगठन के द्वारा ही हुई हो। मगर जब गुजरात के ऊना में दलितों पर कोड़े बरसाए गए और उस पर आज तक कार्रवाई नहीं हुई। रोहित वेमुला की दुखद मृत्यु के बाद केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का आनुषंगिक संगठन उसकी जाति पर सवाल करता है। उसके दलित होने पर प्रश्न खड़े करता है, उसकी बुद्धिमत्ता पर अपमानजनक भाषा का उपयोग होता है। ख्याल रहे कि यह तो फ्रिंज नहीं उनके आधिकारिक संगठन हैं। दलित समुदाय की भंवरी देवी का सामूहिक बलात्कार करने वाले दबंग जाति के लोगों को मंच पर बैठाकर स्वागत किया जाता है। यह स्वागत किसी भी फ्रिंज ने नहीं किया। खुद मुख्य संगठन ने किया। तब पूछना पड़ेगा कि दलित के साथ हुए अत्याचार को सही करार करने का संस्थागत उपक्रम कौन चला रहा है? किसके प्रश्रय से ऐसी घटनाएं घटती है कि बाद में अपनी छवि चमकाने के लिए उन्हें फ्रिंज कहकर पल्ला झाड़ना पड़े। "सबका साथ" जब स्याह दिखने लगे तब केवल सतही चेतना लौटती है, जो मात्र ढकोसला है। यह उस फ्रिंज को भी पता है। असल में यह दुत्कार नही, शाबाशी है।

ऐसा ही कुछ 2 अप्रैल 2017 को भिंड के जातिगत दंगों में हुआ। दंगे के दौरान जो नारे लगे, वे सत्तारूढ़ दल के ही बनाए नारे हैं, जिससे भगवान राम तो कोसों दूर हैं।

यह कतई नहीं कहा जा रहा है कि सीधे तौर पर सत्तारूढ़ दल ने इन घटनाओं को संचालित किया, मगर ऐसा वातावरण निर्माण किया कि खुलकर कोई समूह ऐसा करके गौरवान्वित महसूस करे। परोक्ष रूप से सत्तारूढ़ की ही कारस्तानी लगने लगती है।

स्मृति को थोड़ा पलटकर पीछे ले जाएं तो और भी कुछ परतें खुलती हैं। शतक पूरा कर चुके संगठन की विचार व्यवस्था में इन फ्रिंज की साफ परछाई दिखाई पड़ती है। गुरु गोलवलकर अपनी किताब (मूल संस्करण) 'वी ओर अवर नेशनहुड डिफाइंड' के पृष्ठ 115 में कहते हैं कि हिन्दू राष्ट्र की बुनियाद में वर्णाश्रम व्यवस्था होगी। वह मनु को महान विधिवेत्ता कहते हैं। यह भी कहते हैं कि जाति, छुआछूत भेद के बावजूद महाभारत काल, पुलकेशी और हर्षवर्धन जैसे शासकों का काल कितना स्वर्णिम था। जो संगठन इस पुरानी वर्ण व्यवस्था को नष्ट करना चाहते हैं, उन पर गोलवलकर सवाल खड़े करते है। यानी उनको लगता है कि महाभारत काल महान था। भले राजमहिषी को राजसभा में राजा की मौजूदगी में निर्वस्त्र करने की कोशिश हुई। एक तरह से रेप को संस्थागत प्रश्रय मिला। एकलव्य का अंगूठा कटा, किसी कामगारी कौम के बेटे को राजपुत्रों के साथ पढ़ने की इजाजत नहीं मिली। महाभारत कहानी भले है, पर रचयिता के समाज का दर्पण है। उसमें कई मिलेजुले मूल्य हैं। पर किताब में वर्णाश्रम का विशेष जिक्र है।

क्या जाति आधारित भेद किसी मुल्क को महान बना सकता है? या महान होने में सबसे बड़ा बाधक है। नहीं, तो क्या कारण है कि खगोल, गणित, आयुर्वेद में कई पायदान ऊपर जाने के बाद भी हम वैज्ञानिक तरक्की कर नहीं सके। भले आज कुछ मंत्री पुष्पक विमान पर रोमांचित हो जाएं, मगर सच्चाई सब जानते हैं। जातिगत भेद के न होने से साइकिल मैकेनिक राईट बंधु विमान बना सके। हम खगोल शास्त्र में इतना आगे बढ़कर भी पीछे रहे। ज्ञान को सीमित करके प्रभुत्व जमाकर खुद ही सिमटकर रह गए।

हजारों बरस तक बहुजन समाज कैसे-कैसे अत्याचार का सामना करता रहा। आज भी अधिकांश बहुजन समुदाय गांव के दक्षिणी छोर पर रहने को विवश हैं। आज भी बारात नहीं निकाल सकते, घोड़ी नहीं चढ़ सकते। अंतर्जातीय विवाह का प्रतिकार 'ऑनर किलिंग' से होता है। ऐसे में शतक लगाए संगठन ने कब खुलकर इस वर्णाधारित भेद का विरोध किया। इसी संगठन ने आरक्षण पर पुनर्विचार की भी पहल की थी।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि स्वराज आंदोलन के शीर्ष नेताओं द्वारा अंग्रेजी राज के साथ-साथ जमींदारी और वर्णाधारित भेद को चुनौती देना शतक लगाए संगठन को बिल्कुल नहीं भाया। आम धारणा यह है कि बंटवारे में पाकिस्तान को उसके हिस्से की दोनों पक्षों द्वारा रजामंद राशि दिए जाने के पक्षधर होने से प्रतिक्रिया स्वरूप उन पर गोलियां चलाई गई। गांधी जी की हत्या को अंजाम भले ही 1948 में दिया पर यह पूरी सच्चाई नहीं है। उन पर हत्या के छह प्रयास हुए। 1934 के पहले प्रयास के वक्त पाकिस्तान की कोई कल्पना भी नहीं थी। तो 1934 में उनको मारने की कोशिश क्यों हुई? दरअसल, जाति आधारित पृथक मतदाता मंडल की मांग बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा उठाई गई। गांधी मानते थे कि पृथक मतदाता मंडल से जातिगत भेद सदा के लिए स्थाई हो जाएगा। हिन्दू कभी छुआछूत के कोढ़ से रिहा नहीं हो पाएंगे। पृथक सांप्रदायिक मंडल के विभाजनकारी दुष्परिणाम सामने थे जो अंग्रेजों की फूट डालो नीति की परिणति थी। तब उन्होंने यरवडा जेल में हजारों बरस के छुआछूत के लिए प्रायश्चित स्वरूप अनशन किया। वह चाहते थे कि आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र तय किया जाए, ताकि प्रभुत्व संपन्न को भी उस क्षेत्र में आरक्षित दलित अथवा आदिवासी प्रतिनिधि को ही चुनना पड़े। यह पृथक मतदाता मंडल से अलग था। पृथक मतदाता मंडल में प्रभुत्व संपन्न व्यक्ति अपने समुदाय का प्रतिनिधि चुनता और दलित अपना प्रतिनिधि चुनते। पर आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र में हर तबके को अपना मत उसी समुदाय के व्यक्ति को देना होता है। यानी सदियों से परित्यक्त समुदाय के व्यक्ति को चुनना पड़ता जिसके प्रति प्रभुत्व संपन्न वर्ग ने हमेशा हिकारत रखी। यही पद्धति आज के राजनीतिक आरक्षण की बुनियाद है। इस पर भी कई दक्षिणपंथियों को आक्षेप था। उपवास के दौरान देश में सामाजिक परिवर्तन का आगाज हुआ। मंदिरों के द्वार बहुजन के लिए खुले। अंततः मदन मोहन मालवीय और डॉ. आंबेडकर के बीच पूना पैक्ट हुआ। गांधी की पहल पर जितनी सीटें मांगी गईं थीं, उससे बढ़कर आरक्षण में दी गईं। यह अन्य मुद्दा है कि इस तरह के आरक्षण में भी कई खामियां हैं। बहरहाल, ऐसी स्थिति बनी कि पहली बार प्रभुत्व संपन्न समाज का निर्वाचित प्रतिनिधि कोई दलित हो सकता है। इसके बाद गांधी देश भर में सामाजिक समता के लिए यात्रा पर निकले।

इस पृष्ठभूमि को समझना बेहद जरूरी है। द्वि राष्ट्रवाद की मुखर पैरवी इसके बाद शुरू हुई। गांधी का जातिगत प्रभुसत्ता, जमींदारी के खिलाफ खुलकर आह्वान कुछ ताकतों को बिल्कुल नागवार गुजरा। तब से उनकी हत्या का षडयंत्र शुरू हुआ। पहला हमला पूना में हुआ। वह जातिगत भेद के खिलाफ सभा को संबोधित करके बाहर निकले और जिस गाड़ी में बैठने वाले थे, उस पर बम फेंका गया। वह बच गए, क्योंकि उन्होंने वह गाड़ी नहीं ली। घटना को अंजाम फ्रिंज ने दिया। पर फ्रिंज को वैचारिक प्रोत्साहन किस विचारवान संस्था से मिल रहा था। यह कहना जरूरी नहीं। असल में इस शतक पूर्ण किए संगठन का लक्ष्य मजहब आधारित द्वि राष्ट्र नहीं था। स्पष्ट तौर से वर्णाश्रम आधारित द्विज राष्ट्र बनाना है। द्विज माने जनेऊ धारण करके पुनः जन्म लेना जो कि केवल प्रभुत्व संपन्न का जन्म प्रदत अधिकार है। बहुजन समाज को चाहिए कि वे समझें कि इस द्विज राष्ट्र की क्या मान्यताएं होंगी। बहुजन को उनकी तहजीब के साथ स्वीकार नहीं किया जाएगा। उन्हें आज्ञाकारी, सेवक धर्म के लिए तैयार किया जाएगा। उनकी अपनी भोजन की पसंद या चयन के साथ स्वीकारा नहीं जाएगा, बल्कि उनको प्रभुत्व संपन्न जीवन शैली में ढलने को विवश किया जाएगा। उसे सभ्य होने का मानदंड माना जाएगा। उनके हाथ से कोई उद्घाटन नहीं होगा। वे जरूर मूर्तिवत रखे जाएंगे।

गांधी ने प्रभुत्व संपन्न को उन सब काम को करने के लिए तैयार किया जिसे अछूत कहा करते थे। शतक पूरा किए संगठन के द्विज राष्ट्रवाद में सबको प्रभुत्व संपन्न मूल्य व्यवस्था अपनाने की बाध्यता होगी।

इस संदर्भ में उत्तराखंड की घटना को देखा जाना चाहिए। वह द्विज राष्ट्र का आईना है, जो वक्त से पहले साफ दिखाई दे गया। उसको अंजाम किसी ने दिया हो। वह इस वैचारिक पार्श्वभूमि में पनपा और उसकी जिम्मेदारी सत्तारूढ़ दल और शतक पूर्ण किए संगठन की है। वह संगठन जो अपना हिसाब देना अपनी शान के खिलाफ समझता है। ■

उत्तराखंड के हल्द्वानी में हवन की यह नाटक वाली घटना बताती है कि छुआछूत और भेदभाव को बढ़ावा देने वाले कौन लोग हैं

**बहुजन समाज अत्याचार का सामना करता रहा। वे आज भी गांव के दक्षिणी छोर पर रहने को विवश हैं, बारात नहीं निकाल सकते, घोड़ी नहीं चढ़ सकते। शतक लगाए संगठन ने कब खुलकर इस वर्णाधारित भेद का विरोध किया?**

# भारत सरकार के सामने 'हसीना संकट'

## शेख हसीना को शरण देना भारत के लिए सिर्फ पुरानी दोस्ती निभाने का मामला नहीं, गंभीर कूटनीतिक फांस बन चुका है

**फैसल महमूद**

महीनों से भारत और बांग्लादेश अपने रिश्तों को पटरी पर लाने की कोशिश कर रहे थे। 5 अगस्त 2024 को शेख हसीना के तख्तापलट और उनके भारत पलायन से दोनों देशों के रिश्ते बुरी तरह गड़बड़ा गए थे। भारत के सिर अनचाहे एक ऐसी सहयोगी का बोझ आ गया था, जो तकरीबन पूरे बांग्लादेश में राजनीतिक रूप से अछूत हो चुकी थी।

फिर, 5 अगस्त 2026 को नई दिल्ली में हसीना का लाइव ऑडियो संबोधन बांग्लादेश के प्रधानमंत्री तारिक रहमान की भारत की पहली आधिकारिक राजकीय यात्रा (21-22 अगस्त) की तैयारियों को पटरी से उतार देता है। बेशक इस यात्रा को औपचारिक तौर पर रद्द नहीं किया गया है, लेकिन अब यह तय योजना के मुताबिक भी आगे नहीं बढ़ रही है।

भारत ने रहमान को बिम्सटेक के अध्यक्ष की हैसियत से अगले महीने नई दिल्ली में होने वाले ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में शामिल होने का न्योता भी दिया है। बांग्लादेश ने साफ कर दिया है कि वह किसी बहुपक्षीय सम्मेलन के बहाने नहीं, बल्कि एक मुकम्मल और स्वतंत्र द्विपक्षीय यात्रा चाहता है जिसमें एक संप्रभु राष्ट्र के निर्वाचित प्रधानमंत्री के कद के मुताबिक पूरा राजकीय सम्मान और ठोस राजनीतिक एजेंडा हो। लेकिन अब यह बातचीत भी हसीना के विवाद में उलझकर रह गई है।

इस घटनाक्रम की गंभीरता यात्रा टलने में उतनी नहीं है, जितनी इसके पीछे के कारण में। बांग्लादेश ने भारत को पहले ही आगाह किया था कि भारतीय जमीन से हसीना को राजनीतिक गतिविधियां चलाने की अनुमति देने से परस्पर रिश्ता पटरी से उतर सकता है जिसे सुधारने में दोनों सरकारों ने महीनों लगाए। जब नई दिल्ली ने हसीना के उस मीडिया कार्यक्रम को नहीं रोका, तो ढाका इस नतीजे पर पहुंचा कि रहमान की यात्रा के लिए जैसा अनुकूल माहौल चाहिए था, वह नहीं है।

भारत का कहना है कि उसने न तो इस कार्यक्रम का आयोजन किया और न ही हसीना के बयानों का समर्थन किया। उसके विदेश मंत्रालय ने दोहराया है कि नई दिल्ली पारस्परिकता के आधार पर बांग्लादेश के साथ 'सकारात्मक, रचनात्मक और भविष्योन्मुखी रिश्ते' चाहती है, और ढाका के प्रत्यर्पण अनुरोध की कानूनी प्रक्रियाओं के तहत जांच की जा रही है।

राजनयिक दृष्टि से यह सफाई बेशक अपना बचाव करने लायक हो, लेकिन कूटनीतिक रूप से यह बहुत अप्रभावी साबित हुई है। बांग्लादेश के लिए सवाल यह नहीं है कि भारत सरकार ने हसीना के मीडिया संबोधन का 'इंतजाम' किया या नहीं। असली सवाल यह है कि नतीजों की साफ चेतावनी मिलने के बावजूद क्या भारत एक ऐसी पूर्व प्रधानमंत्री को राजनीतिक मंच मुहैया करा रहा था, जिसे 2024 के जन-विद्रोह के दमन के मामले में बांग्लादेश में मानवता के खिलाफ अपराधों का दोषी ठहराया गया है और मौत की सजा सुनाई गई है।

ढाका का कदम बेहद नपा-तुला रहा है। अपनी यात्रा

फोटो: गेटी इमेजेज

नई दिल्ली में भारत सरकार की तरफ से पत्रकारों को बताया गया कि उसने ऑडियो बातचीत में बांग्लादेश की पूर्व प्रधानमंत्री शेख हसीना (इनसेट) की टिप्पणियों का समर्थन नहीं किया

बांग्लादेश ने मीडिया इवेंट में हसीना की मौजूदगी को इस संकेत के तौर पर देखा कि दिल्ली तारिक रहमान की मेज़बानी करने को तैयार नहीं है। निर्वासन में रहकर भी द्विपक्षीय संबंधों को प्रभावित करने की उनकी क्षमता ने नई दिल्ली के सामने नया कूटनीतिक सिरदर्द खड़ा कर दिया है

के माहौल को भारत द्वारा हसीना से निपटने के तौर-तरीके से जोड़कर, तारिक रहमान सरकार ने अपेक्षाकृत कम नुकसान वाला राजनयिक जोखिम उठाया है। उसने व्यापार, सुरक्षा सहयोग, ऊर्जा आदान-प्रदान या अन्य व्यावहारिक क्षेत्रों के संपर्कों को निलंबित नहीं किया है। न ही उसने यात्रा को लेकर बातचीत से पूरी तरह पल्ला झाड़ा है। इसके बजाय उसने उस चीज को रोक दिया है जो भारत साफ तौर पर चाहता था-नरेन्द्र मोदी और बांग्लादेश के नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री के बीच एक त्वरित शिखर वार्ता का राजनीतिक प्रतीकवाद।

रहमान के लिए इस रणनीति का एक स्पष्ट घरेलू राजनीतिक फायदा है। बांग्लादेश में भारत के साथ रिश्तों से ज्यादा संवेदनशील और कोई राजनीतिक मुद्दा नहीं है, और इतिहास गवाह है कि नई दिल्ली के सामने नतमस्तक दिखने से ज्यादा नुकसानदेह आरोप दूसरा नहीं। भारतीय राजधानी में हसीना को सार्वजनिक मंच दिए जाने के फौरन बाद भारत का दौरा करने से इनकार करके रहमान यह साबित कर सकते हैं कि भारत के साथ संबंध मुल्क के राजनीतिक आत्मसम्मान की कीमत पर नहीं साधे जाएंगे। यह रणनीति उन्हें भारत की मंजूरी का मोहताज दिखे बिना, उसके साथ बातचीत का दरवाजा खुला रखने की सहूलियत भी देती है।

यह अंतर बहुत मायने रखता है। रहमान सरकार ने कोई भारत-विरोधी नीति नहीं अपनाई। इसके बजाय उसने उस नीति को परिभाषित करने की कोशिश की है जिसे अधिकारी 'बांग्लादेश फर्स्ट' नीति बताते हैं-यानी संप्रभु समानता, पारस्परिकता और गैर-हस्तक्षेप आधारित सहयोग। सरकार ऊर्जा, व्यापार, सुरक्षा और जल-बंटवारे पर भारतीय सहयोग की इच्छुक है। गंगा जल-बंटवारा संधि इसी साल खत्म हो रही है, जिससे लगातार बातचीत जरूरी हो जाती है। खतरा इस बात का है कि ढाका का यह रुख मूलतः प्रतिक्रियात्मक बना हुआ है।

फौरी बढ़त काफी हद तक भारत को है, क्योंकि भारत में रहते हुए हसीना को कितनी राजनीतिक जगह दी जाए, इसका नियंत्रण नई दिल्ली के पास है, न कि ढाका के पास। हसीना का हर नया भाषण, साक्षात्कार या राजनीतिक दखल बांग्लादेश को यह फैसला करने के लिए मजबूर कर सकता है कि वह जवाब दे, तनाव बढ़ाए या उसे नजरअंदाज करे।

इसलिए हसीना को लेकर भारत के फैसलों के इर्द-गिर्द बुनी गई नीति से यह जोखिम पैदा होता है कि नई दिल्ली- और परोक्ष रूप से खुद हसीना-द्विपक्षीय संबंधों की लय तय करने लगेंगी। तात्कालिक रूप से यह स्थिति भले ही निभ जाए, लेकिन लंबे दौर में यह भारी कीमत वसूलेगी।

भारत के पास हसीना को लेकर रणनीतिक अस्पष्टता बनाए रखने का विकल्प है- न तो उनका प्रत्यर्पण करना और न ही औपचारिक रूप से उन्हें गले लगाना, और इस तरह पूर्व सहयोगी को ढाका पर संभावित दबाव के स्रोत के रूप में बनाए रखना। या फिर, वह उनकी कानूनी स्थिति में बदलाव किए बिना या बांग्लादेशी दबाव के आगे सार्वजनिक रूप से झुके बिना चुपचाप उनकी राजनीतिक गतिविधियों पर लगाम लगा सकता है। दूसरा रास्ता भारत के लिए कहीं अधिक व्यावहारिक और आकर्षक हो सकता है।

भारत के लिए हसीना का महत्व हमेशा उस स्थिरता से जुड़ा रहा, जो वह अपने दौर में मुहैया कराती थीं। सत्ता में अपने 15 वर्षों के दौरान, उनकी सरकार ने भारत की सुरक्षा चिंताओं का समाधान किया, बांग्लादेशी जमीन का इस्तेमाल करने वाले पूर्वोत्तर के विद्रोही गुटों पर नकेल कसी और नई दिल्ली के साथ व्यापक आर्थिक, ट्रांजिट और ऊर्जा रिश्ते विकसित किए। लेकिन किसी सहयोगी की रणनीतिक उपयोगिता तब बदल जाती है जब वह सत्ता गंवा बैठता है। हसीना को राजनीतिक रूप से शरण देना एक बात है, लेकिन उनकी मौजूदगी को बांग्लादेश की एक चुनी हुई सरकार के साथ भारत के रिश्तों में रोड़ा बनने देना अलग बात है।

5 अगस्त के उनके संबोधन ने भारत के 'हसीना संकट' को उजागर कर दिया है। ढाका और नई दिल्ली के बीच नए सिरे से बन रहे समीकरणों को अस्थायी रूप से बाधित करके, हसीना ने यह दिखा दिया है कि वह निर्वासन में रहकर भी बांग्लादेशी राजनीति को प्रभावित करने की ताकत रखती हैं।

दोनों देश लगभग 4,100 किलोमीटर लंबी सीमा साझा करते हैं। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों से संपर्क की दृष्टि से बांग्लादेश बहुत महत्वपूर्ण है और बंगाल की खाड़ी के इर्द-गिर्द गहरे आर्थिक एकीकरण की नई दिल्ली की आकांक्षाओं के केन्द्र में है। सीमा सुरक्षा, आतंकवाद-विरोध, बिजली व्यापार, ट्रांजिट और नदियों का प्रबंधन-इन सब के लिए ढाका की मौजूदा सत्ता के साथ एक कामकाजी और सहज रिश्ता जरूरी है।

अगर मान भी लें कि लंबे समय में हसीना सत्ता में वापसी कर लेंगी, तो भी यह तय है कि इससे बांग्लादेश में जबर्दस्त अस्थिरता पैदा होगी। भारत के लिए ऐसे किसी परिणाम का आक्रामक समर्थन करना भारी राजनीतिक और क्षेत्रीय जोखिम भरा होगा। इसका मतलब यह कतई नहीं है कि नई दिल्ली हसीना को बेसहारा छोड़ देगी। भारत के उनके और अवामी लीग के साथ दशकों पुराने रिश्ते हैं और प्रत्यर्पण का मसला कानूनी और राजनीतिक रूप से बेहद पेचीदा है।

ऐसे संकेत पहले से मौजूद हैं कि दोनों सरकारें इस विवाद को रिश्ते पर हावी होने देने की कीमत समझती हैं। 18 अगस्त को ढाका में भारतीय उच्चायुक्त दिनेश त्रिवेदी ने कहा, 'हमें आगे बढ़ना होगा। मैं नहीं कह रहा कि आप अतीत को भूल जाएं, लेकिन... मतभेदों को सुलझाएं... रिश्तों को ठहराव का शिकार न बनने दें।'

त्रिवेदी ने कहा कि मोदी रहमान से मिलने के इच्छुक हैं और उन्होंने भरोसा दिलाया कि बांग्लादेशी प्रधानमंत्री का भारत में 'सम्मानजनक स्वागत' किया जाएगा। उन्होंने इस रिश्ते को 'बराबरी की साझीदारी' बताया और कहा कि दोनों प्रधानमंत्रियों की मुलाकात से मतभेद सुलझाए जा सकते हैं।

यह भाषा बेहद उल्लेखनीय थी क्योंकि इसने ढाका में जमा हो रही आशंकाओं का बिंदुवार समाधान किया: समानता, सम्मान, राजनीतिक मान्यता और कठिन मुद्दों से निपटने के लिए एक सार्थक द्विपक्षीय बैठक की जरूरत। यह इस बात की भी स्वीकारोक्ति थी कि सिर्फ औपचारिक प्रोटोकॉल इस रिश्ते को दोबारा पटरी पर नहीं ला सकता। ■

**फैसल महमूद ढाका में रहने वाले पत्रकार हैं**

# एक जन-नेता का उदय

**क्यों लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी भारतीय राजनीति के मौजूदा निराशाजनक माहौल में उम्मीद जगाते हैं**

**सैयदा हमीद, तनवीर हुसैन खान**

मैंने पहली बार जवाहरलाल नेहरू का हाथ तब पकड़ा था, जब नौ साल की थी और उन्होंने मुझे कार्टूनिस्ट शंकर यानी केशव 'शंकर' पिल्लई द्वारा शुरू की गई पत्रिका 'शंकर्स वीकली' में छपी मेरी कहानी के लिए बतौर इनाम 'एक वॉकी-टॉकी गुड़िया' दी थी। प्यार से गुड़िया मुझे देते हुए उन्होंने कहा, "यह गुड़िया तो तुमसे भी लंबी है!" साठ साल बाद, जब भारत जोड़ो यात्रा दिल्ली से गुजरी, तब उनके प्रपौत्र के साथ चलते हुए मुझे वैसी ही आत्मीयता और इंसानी जुड़ाव का अहसास हुआ।

भारत की मौजूदा राजनीति में इन दोनों नेताओं को सबसे ज्यादा बदनाम किया गया है। शायद इसलिए क्योंकि ये दोनों ही भारत के बारे में संघ की 'बहुसंख्यकवादी' सोच को पूरी तरह से खारिज करते हैं। राहुल गांधी का राजनीतिक रुख एकदम साफ हैः वह खुद को भारतीय संविधान के रक्षक के तौर पर पेश करते हैं। 'भारत जोड़ो यात्रा' के दौरान अपने भाषणों में वह संविधान हमेशा अपने हाथ में रखते; उस चीज के प्रतीक के तौर पर जिसके बारे में वह मानते हैं कि वह खतरे में है। उनका संदेश सीधा लेकिन असरदार है- समानता, न्याय और भाईचारे की संवैधानिक गारंटियां सुनियोजित तरीके से कमजोर की जा रही हैं, और सभी नागरिकों को इनकी रक्षा के लिए आगे आना चाहिए।

उनकी बातों की ईमानदारी युवाओं को प्रभावित करती है। जब वह युवाओं के मुद्दे उठाते हैं, उन्हें जोर-शोर से रखते हैं, तो युवाओं को वह अपने से लगते हैं, वे उन्हें अपना साथी मानते हैं। हाल ही में इस अहंकारी सरकार को हिलाकर रखने वाले 'जेन ज़ी' प्रदर्शनकारी भी इसकी तस्दीक करेंगे। तोल-मोलकर और घिसी-पिटी बातें करने वाले पुराने नेताओं के विपरीत राहुल गांधी ने खुलकर और बार-बार आरएसएस-भाजपा पर निशाना साधा है और उन पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करने का आरोप लगाया है। छात्रों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "यह आरएसएस, भाजपा और उनके द्वारा नियुक्त लोगों की मिलीभगत है", और उन पर भारत की शिक्षा व्यवस्था को बर्बाद करने का आरोप लगाया। उस पीढ़ी के लिए जो मोदी सरकार के दौर में सत्ता का केन्द्रीकरण देखते हुए बड़ी हुई है, ऐसी साफ और सीधी बात सुनना अच्छा लगता है।

राहुल गांधी के राजनीतिक सफर में 'भारत जोड़ो यात्रा' एक अहम मोड़ साबित हुई। 7 सितंबर 2022 से 30 जनवरी 2023 तक, उन्होंने कन्याकुमारी से श्रीनगर तक 4,000 किलोमीटर से लंबी पदयात्रा की, जिसमें 12 राज्य और दो केन्द्र-शासित प्रदेश शामिल थे। यह यात्रा कोई पहले से तयशुदा स्क्रिप्ट वाला अभियान नहीं, लोगों से सीधे जुड़ाव का एक खुला अनुभव था- राहुल ने बोलने से ज्यादा लोगों की बातें सुनीं और जिन समुदायों से मिले, उन्हीं को तय करने दिया कि बातचीत का स्वरूप कैसा हो।

यात्रा इसलिए सफल रही क्योंकि इसने उस सोच को नकारा कि लीडरशिप का मतलब सिर्फ कंट्रोल करना है। इसने ऐसे अवसर उपलब्ध कराए जहां अनसुनी आवाजें किसी राष्ट्रीय नेता से बातचीत को आकार दे सकती थीं। असल में, यह नागरिकों के साथ भरोसा कायम करने की एक कोशिश थी- और युवा स्वाभाविक रूप से जानते हैं कि मीडिया कैंपेन के जरिये भरोसा पैदा नहीं किया जा सकता। यात्रा ने राष्ट्रीय राजनीति को लेकर एक वैकल्पिक नजरिया प्रस्तुत किया। यह इस संभावना का इजहार है कि हम, यानी भारत के लोग, ध्रुवीकरण और बंटवारे की राजनीति को नकार सकते हैं और एक बार फिर अनेकता और सबको साथ लेकर चलने वाली राजनीति को अपना सकते हैं; कि हम उस शक और 'नफरत' को परे धकेल सकते हैं जो हमारी राजनीति की पहचान चुका है, और सबकी भागीदारी और 'मोहब्बत' वाली राजनीति की ओर बढ़ सकते हैं।

अपनी राजनीतिक कार्यशैली में राहुल गांधी इस संभावना को साकार करते दिखते हैं। वह हमेशा पीड़ित और हाशिये पर पड़े लोगों के साथ खड़े रहे हैं। तीन प्रमुख आंदोलनों का ध्यान आता है- किसानों का विरोध-प्रदर्शन, मणिपुर में जातीय हिंसा और पहलवानों का धरना।

वह किसानों के साथ खड़े रहे। उन्होंने कहा, "आप उन्हें पीट रहे हैं, उन्हें धमका रहे हैं, जबकि सरकार को किसानों से बात करनी चाहिए और कोई समाधान निकालना चाहिए, और इसका एकमात्र समाधान इन कानूनों को रद्द करना है।" उन्होंने किसानों से कहाः "एक इंच भी पीछे न हटें" (अपने विरोध स्थलों से)। उन्होंने इसे आम किसानों और अडानी-अंबानी जैसी बड़ी कॉरपोरेट कंपनियों के बीच की लड़ाई के तौर पर पेश किया। इस विरोध में कोई किंतु-परंतु नहीं था। यह उस आंदोलन का पुरजोर समर्थन था जिसे दबाने की सरकार हर कोशिश कर रही थी।

मणिपुर राहुल उन शुरुआती राजनीतिक नेताओं में से थे, जिन्होंने राहत कैंपों का दौरा किया, प्रभावित महिलाओं और बच्चों से मिले। उन्होंने संसद में खड़े होकर कहाः "हमारे प्रधानमंत्री वहां नहीं गए। प्रधानमंत्री मणिपुर को भारत का हिस्सा नहीं मानते।"

फोटो: गेटी इमेजेज

राहुल गांधी के राजनीतिक कॅरियर में अहम मोड़ साबित 'भारत जोड़ो यात्रा'। (इनसेट) पंडित जवाहरलाल नेहरू से इनाम के तौर पर वॉकी-टॉकी वाली गुड़िया लेतीं नौ साल की सैयदा हमीद

जब भारत के शीर्ष पहलवान भारतीय कुश्ती महासंघ के तत्कालीन अध्यक्ष बृजभूषण शरण सिंह के खिलाफ विरोध प्रदर्शन कर रहे थे, राहुल गांधी हरियाणा में उनके अखाड़े में पहुंचे। उन्होंने पहलवानों से बातचीत की, उनकी कसरतों में हिस्सा लिया और न्याय की उनकी लड़ाई के प्रति अपना समर्थन जताया। हाल ही में, जब पूरे भारत में छात्र नीट-यूजी पेपर लीक को लेकर सड़कों पर उतरे और शिक्षा मंत्री के इस्तीफे की मांग करने लगे, वह फिर उनके साथ खड़े दिखे, उनका समर्थन किया, उनकी मांगों को जोर-शोर से उठाया और सरकार पर राजनीतिक दबाव बढ़ाया। उनके नेतृत्व में चल रही 'छात्रों की गूंज' रैलियां इस आंदोलन को पूरे देश में पहुंचा रही हैं। कोटा, देहरादून और प्रयागराज में रैलियां हो चुकी हैं, और यह लिखे जाने तक 22 अगस्त को पुणे में चौथी रैली तय थी।

उनका संदेश साफ हैः "कई बार पेपर लीक हुए हैं और 2 करोड़ युवाओं का भविष्य बर्बाद हो गया है। अगर सरकार आपकी सुरक्षा नहीं कर सकती, तो विपक्ष करेगा।" उन्होंने तीन ऐसी मांगें रखीं जिन पर कोई समझौता संभव नहीं था- (तत्कालीन) शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान की बर्खास्तगी, जिन्हें उन्होंने 'भ्रष्ट, अक्षम और गलत सोच वाला' बताया; युवा प्रदर्शनकारियों पर बर्बरता करने वाली पुलिस के खिलाफ कार्रवाई; और प्रधानमंत्री की ओर से सार्वजनिक माफी।

राहुल विरोध कर रहे छात्रों के साथ खड़े रहे- महज दूर खड़े एक संरक्षक के तौर पर नहीं, बल्कि एक सक्रिय सहयोगी के तौर पर, जो उनकी ऊर्जा को राजनीतिक मंच की ओर मोड़ने में सहायक रही। सत्ता से चिपके राजनीतिक बुजुर्गों के प्रति छात्रों की बेचैनी को समझते हुए उन्होंने कहाः "छात्र भारत का भविष्य हैं; नरेन्द्र मोदी अतीत हैं, और अतीत कभी भविष्य से नहीं लड़ सकता।"

मोदी के दौर में बड़ी हुई भारत की 'जेन ज़ी' पीढ़ी के लिए यह सब कोरी राजनीतिक बयानबाजी नहीं है। वे ऐसे देश में बड़े हुए हैं जहां बेरोजगारी चरम पर है, पेपर लीक आम बात और बेहतर भविष्य की उम्मीद न्यूनतम नजर आती है। उन्होंने देखा है कि सिस्टम ने उन्हें किस तरह निराश किया है और उन्हें ऐसे व्यक्ति की तलाश है जो उस सिस्टम का हिस्सा बनने से इनकार कर दे। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि राहुल गांधी पर 'वंशवादी नेता' होने का कितना ही ठप्पा लगे, सत्ता के सामने वह सच बोलते हैं, निडर होकर बोलते हैं, और एक ऐसे नेता हैं जिसे हमारी राजनीति में बुनियादी बदलाव से कम कुछ भी मंजूर नहीं।

उनकी राजनीतिक विरासत से इनकार नहीं किया जा सकता, और युवा पीढ़ी विरासत में मिले विशेषाधिकार पसंद नहीं करती है। उनकी पार्टी, कांग्रेस पर अक्सर मजबूत संगठनात्मक ढांचा न बना पाने का आरोप लगता रहा है। और यह भी साफ नहीं है कि राहुल गांधी की डिजिटल और विरोध-आधारित मुहिम विपक्ष को जीत दिलाने वाली मजबूत ताकत के तौर पर तैयार कर पाएगी या नहीं। फिर भी, यही वह व्यक्ति हैं जो कहते हैं: "बीता हुआ कल कभी भी आने वाले कल से नहीं लड़ सकता।" लाखों युवा भारतीयों के लिए, यह सिर्फ एक नारा नहीं- बल्कि उनके इरादे का इजहार है। राहुल गांधी में उन्हें एक ऐसा नेता दिखता है जो उनके साथ खड़ा है। ■

अपनी राजनीतिक गतिविधियों में, राहुल गांधी इस संभावना को साकार करते दिखते हैं कि नफ़रत की राजनीति को हराया जा सकता है। वह हमेशा पीड़ित और हाशिये पर पड़े लोगों के साथ उनके संघर्षों में खड़े रहे हैं

**सैयदा हमीद लेखिका, सामाजिक कार्यकर्ता और योजना आयोग की पूर्व सदस्य और तनवीर हुसैन खान अनंतनाग, जम्मू-कश्मीर के शोधकर्ता और सामाजिक कार्यकर्ता हैं**

# कुटिलताओं के प्रतिरोध का समय

## वर्तमान सत्ताधीश शायद ही सर्वधर्म समभाव की संस्कृति को गंभीरता से जानने-समझने की कोशिश करते हैं

कृष्ण प्रताप सिंह

गत शताब्दी के नवें दशक के उत्तरार्ध की बात है, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परिवार ने अयोध्या में 'वहीं' राममंदिर निर्माण के लिए आसमान सिर पर उठा लिया था और रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के फैसले की प्रतीक्षा के लिए भी तैयार नहीं था। उसके लोग यह तक कह रहे थे कि किसी न्यायालय को इसका फैसला करने का अधिकार ही नहीं है।

लेकिन इस परिवार के आनुषंगिक संगठन विश्व हिन्दू परिषद ने अयोध्या के संतों-महंतों में इस 'दृष्टिकोण' के लिए समर्थन जुटाने की कवायदें तेज कीं, तो पाया कि वे उसका साथ देने को कतई राजी नहीं हैं। अलबत्ता, बाद में बदली परिस्थितियों में उनमें से कुछ सहानुभूति रखने लगे।

अयोध्या (फैजाबाद) के लब्धप्रतिष्ठ सहकारी हिन्दी दैनिक 'जनमोर्चा' के संस्थापक संपादक स्मृतिशेष महात्मा हरगोविंद ने इसको लक्ष्य कर अपने एक लेख में लिखा था कि ये संत-महंत जिस तरह हंसों के भ्रम में बगुलों का साथ दे रहे हैं, वह एक दिन हिन्दू धर्म और भगवान राम दोनों की मर्यादाओं के हनन और अप्रतिष्ठा का बड़ा कारण बन जाएगा।

1990 में विश्व हिन्दू परिषद की बहुप्रचारित 'कारसेवा' में बहे खून की बिना पर 1991 में उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी की पहली पूर्ण बहुमत वाली सरकार बन गई, जिसने राष्ट्रीय एकता परिषद और सर्वोच्च न्यायालय को आश्वस्त करके भी छह दिसंबर 1992 को कारसेवकों से बाबरी मस्जिद की रक्षा का दायित्व नहीं निभाया और बर्खास्तगी के बाद शहादत की मुद्रा ओढ़ ली। तब महात्मा ने एक और लेख में कई उदाहरणों की मार्फत लिखा कि यह याद करने का वक्त है कि इस देश की प्रकृति कुछ ऐसी है कि कोई भी राज्याश्रय किसी भी हालत में किसी भी धर्म के किसी काम नहीं आता।

इस बात को अयोध्यावासियों ने कमोबेश तब तक याद रखा, जब तक संघ परिवार को नरेन्द्र मोदी के रूप में नया 'नायक' नहीं मिल गया। 2014 में 'विकास पुरुष' का चोला धारण करके 'अवतरित हुए' इस नए नायक ने बाद में देशवासियों के सामाजिक-धार्मिक विवेक को अस्त-व्यस्त करने के लिए अनेक फरेब रचे और खुद के लिए सहूलियत पा ली कि वह प्रधानमंत्री के रूप में हिन्दुओं को उनके धर्म को मजबूत राज्याश्रय का झांसा देते हुए अपने को 'धर्माधीश' भी बना ले।

2019 में नौ नवंबर को सर्वोच्च न्यायालय ने राजन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद का राममंदिर के पक्ष में निपटारा किया तो उसने संघ परिवार को ही समूचा हिन्दू समाज मानकर जिस तरह अपने को 'बहुरूपधारी' बनाया, जिसके कारण, एक शंकराचार्य के शब्दों में कहें, तो सारे हिन्दुओं को सहज स्वीकार्य मंदिर के बजाय संघ का कार्यालय निर्मित हुआ और जल्दी ही उसके 'एसेट' में बदल गया, वह सब अभी हमारे हालिया व्यतीत की सबको ज्ञात बातें हैं। यह कुटिल 'राज्याश्रय' जल्दी ही मंदिर निर्माण में भ्रष्टाचार और चढ़ावे की चोरी के खुलासों तक पहुंच कर गंभीर मर्यादा हीनता और अप्रतिष्ठा का कारण बनने लगा तो अयोध्या के लोगों को महात्मा हरगोविंद की बातें फिर याद आने लगीं।

यहां यह बात समझने की है कि क्यों हजारों साल पुराने इतिहास वाले इस देश के लोग धर्म को मनुष्य का व्यक्तिगत चयन मानते आए हैं? देश की जिस धार्मिक बहुलता पर हम आज भी गर्व करते हैं, वह गवाह है कि अपने धर्म के प्रचार और प्रसार की लाख कोशिशों के बाद भी सत्ताओं के लिए इस देश को किसी एक धर्म के रंग में रंगना संभव नहीं हो पाया तो इसीलिए कि जनमानस ने उसमें सहयोगी होना स्वीकार नहीं किया।

इस देश के इतिहास में इसकी अनेक मिसालें हैं, लेकिन दो महान सम्राटों-अशोक और अकबर-की दो खास मिसालों से ही बात पूरी तरह साफ हो जाती है। अपने वक्त में सबसे शक्तिशाली मौर्य राजवंश के प्रतापी सम्राट देवानांप्रिय अशोक ने ईसापूर्व 269 से 232 तक राज किया और कई लोग उन्हें देश का पहला चक्रवर्ती सम्राट मानते हैं। ईसापूर्व 262 से 261 तक लड़े गए ऐतिहासिक कलिंग युद्ध के दौरान हुए भयानक नरसंहार से द्रवित होकर उन्होंने अहिंसामार्गी बौद्ध धर्म की शरण ले ली। उनके समय में देशवासियों का एक बड़ा समूह उनके द्वारा प्रेरित इस धर्मपथ पर गया भी। लेकिन यह धर्म उनके संसार को अलविदा कहने के साढे. पांच दशक तक भी अपनी इस स्थिति को बचाए नहीं रख पाया।

देश की जिस धार्मिक बहुलता पर हम गर्व करते हैं, जनमानस ने हमेशा उसमें सहयोगी होना स्वीकार किया

उनके वंशज नवें मौर्य सम्राट वृहद्रथ की उनके ही सेनापति पुष्यमित्र शुंग (ईसा पूर्व 185-149) ने हत्या कर दी और इतिहासकार डीएन झा के शब्दों में कहें तो बौद्ध भिक्षुओं के संहार और उनके धर्मस्थलों के ध्वंस के रास्ते चलकर सनातन ब्राह्मणीय धर्म की पुनरस्थापना कर दी। बौद्ध धर्म का तो ऐसा उच्छेदन कर डाला कि लोग भूल से गए कि कभी देश में उसका वर्चस्व हुआ करता था। इतिहासकार यह लिखने तक पर विवश हो गए कि महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म दुनिया भर में तो फैला, लेकिन उनके अपने ही देश से लुप्तप्राय हो गया!

> दुनिया का इतिहास कुटिल सत्ताधीशों द्वारा किए जाने वाले धर्म और राजनीति के घालमेल के अनर्थों से भरा पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद हमारे देश को इस घालमेल के अनर्थों से महफ़ूज़ रखने के लिए ही संविधान निर्माताओं ने उसमें राजसत्ता के धर्म से परहेज की व्यवस्था की थी

दूसरी मिसाल मुगल बादशाह अकबर की है, जिन्होंने 11 फरवरी, 1556 से 27 अक्तूबर 1605 तक सत्ता संभाली। उनके द्वारा प्रवर्तित एवं प्रचारित दीन-ए-इलाही का हश्र भी कुछ अलग नहीं हुआ। उन्होंने अपनी बहुधर्मी-बहुभाषी रियाया के लिए सबसे कल्याणकारी मानकर अपने द्वारा प्रवर्तित दीन-ए-इलाही को उस वक्त तक दुनिया भर में प्रचलित तमाम धर्मों का सार-संग्रह बनाने की कोशिश की थी। उसमें हिन्दू और इस्लाम धर्मों की ही नहीं, जैन, बौद्ध एवं ईसाई धर्म-दृष्टियों का भी समाहार किया था।

लेकिन तत्कालीन भारतीय समाज ने उसे कतई स्वीकार नहीं किया। अलबत्ता, अकबर ने कभी किसी पर उसे कुबूल करने का दबाव भी नहीं डाला। इसके उलट उन्होंने तब धार्मिक सहिष्णुता की बड़ी नजीर पेश की, जब पुर्तगाल में कुरान के अपमान से क्षुब्ध उनकी मां बेगम हमीदा बानो ने उन पर हिन्दुस्तान में बाइबिल के उससे बड़े अपमान के आयोजन का दबाव डाला। तब अकबर ने यह कहते हुए मां की बात टाल दी कि पुर्तगालियों द्वारा कुरान का अपमान करना गलत था, तो मेरे जैसे बादशाह के लिए बुराई का प्रतिशोध बुराई से लेना भी बहुत अशोभनीय होगा, क्योंकि किसी भी धर्म का अपमान अंततः ईश्वर का ही अपमान है।

हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक और साहित्यकार विजय बहादुर सिंह कहते हैं कि इस उत्तर आधुनिकताकाल में भारत के लिए इन दोनों महान सम्राटों की मिसालें भुलाना उसे अंधकार की ओर धकेल सकता है, जबकि सबक लेना नए उजाले प्रदान कर सकता है।

उनका मानना है कि हम जितनी जल्दी यह बात समझ जाए उतना ही अच्छा कि देश की चुनी हुई सरकारों का काम किसी धर्म की स्थापना, उसका संरक्षण या प्रचार करना नहीं, बल्कि संवैधानिक प्रतिज्ञाओं के अनुसार सुशासन की स्थापना और लोक-समाज की सारी धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं का यथासंभव आदर करना है।

अफसोस कि वर्तमान सत्ताधीश शायद ही कभी देश की इस संस्कृति को गंभीरता से जानने-समझने की कोशिश करते हैं। दुनिया का इतिहास भी कुटिल सत्ताधीशों द्वारा किए जाने वाले धर्म और राजनीति के घालमेल के अनर्थों से भरा पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद हमारे देश को इस घालमेल के अनर्थों से महफ़ूज़ रखने के लिए ही संविधान निर्माताओं ने उसमें राजसत्ता के धर्म से परहेज की व्यवस्था की थी।

आज इस परहेज के टूटने को इस कदर 'गर्व' का विषय बना दिया गया है कि कभी संविधान का सबसे पवित्र मूल्य रही धर्मनिरपेक्षता छद्म करार दी जाने लगी और मजाक का विषय बना दी गई है। इतना ही नहीं, सरकारों में खुद को बहुसंख्यकों के धर्म की सबसे बड़ी पैरोकार, हिन्दूवादी या हिन्दुत्ववादी प्रदर्शित करने का फैशन-सा चल पड़ा है।

निस्संदेह, वह समय हमारे सामने आ खड़ा हुआ है जब समूचे हिन्दू समाज को उसे खुश रखने के नाम पर बरती जा रही इन सारी कुटिलताओं और स्वार्थ साधनाओं को उनके वास्तविक रूप में पहचान और साथ ही यह समझकर कि उनसे सबसे ज्यादा नुकसान उसके समाज का ही है, पूरी शक्ति से उनका प्रतिरोध करना चाहिए। इससे कम पर तो सत्ताधीशों को संसद में चढ़ावा-चोरी पर चर्चा तक मंजूर नहीं है। ■

# सुरक्षित समय का महत्वपूर्ण नाम

## दृष्टि, संवाद और अपने समय के साथ बनाए संबंधों से उपस्थित रहने वाले व्यक्ति, कथाकार और संपादक ज्ञानरंजन

शैलेंद्र चौहान

**ज्ञानरंजन** को केवल कथाकार या संपादक के रूप में याद करना उनके व्यक्तित्व और साहित्यिक अवदान को सीमित कर देना होगा। हिन्दी साहित्य में कुछ लोग अपनी रचनाओं से जितना उपस्थित होते हैं, उससे कहीं अधिक अपनी दृष्टि, अपने संवाद और अपने समय के साथ बनाए गए संबंधों से उपस्थित रहते हैं। ज्ञानरंजन ऐसे ही व्यक्तित्व हैं। मेरे लिए उनसे लगभग पैंतालीस वर्षों का संवाद और संपर्क केवल साहित्यिक परिचय नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य की एक पूरी पीढ़ी, उसकी बेचैनियों, उसके आत्मसंघर्ष और उसकी वैचारिक आकांक्षाओं के साथ लंबी यात्रा है।

इस यात्रा में पत्र हैं, 'पहल' है, मुलाकातें हैं, छपने की खुशी है, पहल सम्मान के अवसर हैं और इन सबके बीच एक ऐसे व्यक्ति की स्मृति है जिसने साहित्य को केवल लिखने-पढ़ने की गतिविधि न मानकर उसे जीवित सांस्कृतिक हस्तक्षेप की तरह बरता।

> ज्ञानरंजन की सबसे बड़ी उपलब्धियों में शायद यह है कि उन्होंने लेखक होने और संपादक होने के बीच कोई कृत्रिम दीवार नहीं खड़ी की। कथाकार की रचनात्मक बेचैनी और संपादक की वैचारिक बेचैनी एक-दूसरे को पुष्ट करती रही

ज्ञानरंजन से पहला परिचय प्रत्यक्ष नहीं, पत्र के माध्यम से हुआ था। 1977 में मैंने उन्हें पहली बार पत्र लिखा। तब पत्र लिखना भी एक तरह का साहस था। भीतर संकोच था—क्या जवाब देंगे? क्या मेरा पत्र उनके लिए महत्त्वपूर्ण होगा? तब न ई-मेल था, न मोबाइल, न त्वरित संदेशों की सुविधा। पत्र भेजना अपने भीतर की किसी आकांक्षा को डाक के हवाले कर देना था और फिर उत्तर की प्रतीक्षा करना। ज्ञानरंजन का उत्तर आया। साथ में 'पहल' भी आई। यह छोटा-सा प्रसंग मेरे लिए धीरे-धीरे दीर्घ साहित्यिक संबंध की शुरुआत बन गया।

'पहल' उस समय के हिन्दी साहित्य में अलग तरह की बेचैनी, बहस और वैचारिक सक्रियता का प्रवेश था। ज्ञानरंजन ने बतौर संपादक पत्रिका को ऐसी पहचान दी जिसमें साहित्य अपने समय से अलग खड़ा दिखाई नहीं देता था। उसमें रचनात्मकता के साथ विचार की बेचैनी थी और विचार के साथ रचना की स्वतंत्रता। 'पहल' ने हिन्दी साहित्य के अनेक स्थापित प्रतिमानों से संवाद किया, उनसे असहमति जताई और नई रचनाशीलता को जगह दी। यही कारण है कि 'पहल' को केवल एक साहित्यिक पत्रिका की तरह पढ़ना उसके ऐतिहासिक महत्त्व को कम करके देखना होगा।

मेरे लिए 'पहल' का संबंध व्यक्तिगत भी होता गया। वर्ष-पर्यंत नियमित रूप से मिलती रही। नौकरी लगने के छह महीने बाद मैंने सौ रुपये भेजकर आजीवन सदस्यता ले ली। यह सदस्यता किसी पत्रिका को आर्थिक सहयोग भर नहीं थी; उसमें उस साहित्यिक संसार के प्रति विश्वास भी शामिल था जिसे 'पहल' अपने ढंग से निर्मित कर रही थी।

1982 में ज्ञानरंजन इलाहाबाद आए। तब तक मैं नांदेड़ से नौकरी बदलकर इलाहाबाद आ चुका था। यह वह समय था जब पत्रों और पत्रिका के माध्यम से बना संबंध पहली बार घर की चौखट तक आया। ज्ञानरंजन सपत्नीक मेरे घर आए। उस मुलाकात को याद करता हूं तो उसमें आत्मीय सहजता दिखाई देती है।



ज्ञानरंजन सहज भी लगते हैं और अपने भीतर एक अलग संसार बनाए रखते हैं। उनसे संवाद में केवल प्रशंसा या आत्मीयता पर्याप्त नहीं थी; साहित्य, समाज और रचना के प्रश्नों को लेकर अपनी स्वतंत्र दृष्टि रखना भी जरूरी था। शायद यही कारण है कि उनके साथ संबंध किसी एकतरफा श्रद्धा में नहीं बदलता। 'महत्व शमशेर' के अवसर पर जबलपुर में उनसे फिर भेंट हुई। साहित्यिक जीवन में यही छोटे क्षण बाद में दीर्घ संबंधों के संकेतक बन जाते हैं।

1983 से 'पहल' में मेरे छपने का सिलसिला शुरू हुआ और लंबे समय तक चलता रहा। 'पहल' में छपना मेरे लिए अपने लेखन को व्यापक साहित्यिक बहस के बीच रखे जाने जैसा था।

> ज्ञानरंजन को याद करना उस साहित्यिक संस्कृति को याद करना भी है जिसमें एक अनजान लेखक का पत्र पढ़ा जाता था, उसका उत्तर दिया जाता था, उसे पत्रिका भेजी जाती थी और धीरे-धीरे एक संवाद संबंध में बदल जाता था

ज्ञानरंजन ने पत्रिका को निजी पसंद का संग्रहालय नहीं बनाया। उसकी असहमति भी थी, जिद भी थी, प्रयोगशीलता भी और अपने समय की धड़कनों को पकड़ने की कोशिश भी। संपादन उनके लिए केवल सामग्री चुनना नहीं था। वह एक साहित्यिक दृष्टि का निर्माण था। वह जानते थे कि किसी पत्रिका की असली पहचान उसके छपे हुए नामों से कम और उन सवालों से अधिक बनती है जिन्हें वह साहित्य के सामने रखती है।

यही वजह है कि 'पहल' का इतिहास हिन्दी साहित्य के समकालीन इतिहास से अलग करके नहीं देखा जा सकता। हिन्दी में पत्रिकाएं आती-जाती रही हैं, लेकिन कुछ पत्रिकाएं अपने समय में केवल रचनाएं प्रकाशित नहीं करतीं, वे पाठकीय विवेक को भी निर्मित करती हैं। 'पहल' इसी अर्थ में महत्वपूर्ण रही। उसने साहित्य को बंद कमरे की गतिविधि बनने से रोका। सामाजिक यथार्थ, राजनीति, संस्कृति, इतिहास, विश्व साहित्य और वैचारिक बहसों को साहित्यिक संसार के भीतर जगह दी। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि संपादक को हर समय साहित्यिक फैशन और वास्तविक साहित्यिक आवश्यकता के बीच चुनाव करना पड़ता है।

ज्ञानरंजन के कथाकार रूप को भी उनके संपादकीय व्यक्तित्व से अलग करके देखना कठिन है। उनकी कहानियों में जो असुविधा, विडंबना, बेचैनी और संबंधों की जटिलता दिखाई देती है, वह किसी आसान निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाती। वह जीवन को उसकी उलझनों सहित देखते हैं।

यहां उनके संपादक और कथाकार का गहरा संबंध दिखाई देता है। कथाकार जीवन के भीतर छिपे तनावों को पहचानता है और संपादक साहित्य के भीतर छिपी संभावनाओं और संकटों को। दोनों की दृष्टि में एक तरह की बेचैनी है। शायद इसीलिए ज्ञानरंजन का संपादन भी किसी शांत, निष्पक्ष प्रशासनिक प्रक्रिया की तरह नहीं दिखाई देता। उसमें पक्षधरता है, चयन है, असहमति है और साहित्य की दिशा को लेकर एक बेचैन आग्रह है।

वर्षों के इस संपर्क में 'पहल सम्मान' के कार्यक्रमों में शामिल होने का अवसर भी मिला। 'पहल' ने जिन लेखकों, कलाकारों और विचारों के बीच संवाद कायम किया, उसके पीछे ज्ञानरंजन की सक्रिय उपस्थिति थी। 'पहल सम्मान' इस अर्थ में अपने समय के साहित्यिक परिदृश्य का महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आयोजन बनता गया।

ज्ञानरंजन की सबसे बड़ी उपलब्धियों में शायद यही है कि उन्होंने लेखक होने और संपादक होने के बीच कोई कृत्रिम दीवार नहीं खड़ी की। कथाकार की रचनात्मक बेचैनी और संपादक की वैचारिक बेचैनी एक-दूसरे को पुष्ट करती रही। उन्होंने 'पहल' को अपनी निजी उपस्थिति का विस्तार तो बनाया, लेकिन उसे केवल अपने लेखकीय व्यक्तित्व का मंच नहीं बनने दिया। उसमें अनेक आवाजों के लिए जगह बनी।

मेरे लिए ज्ञानरंजन की स्मृति इसी दोहरे रूप में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है—व्यक्ति और संस्था, कथाकार और संपादक, आत्मीय और आलोचनात्मक। उनके साथ मेरा संबंध किसी एक समय की निकटता का संबंध नहीं रहा; वह समय के साथ बदलता, फैलता और अपनी नई अर्थवत्ताएं ग्रहण करता रहा है। कभी वह एक पत्रिका के नियमित पाठक का संबंध था, कभी प्रकाशित लेखक का, कभी किसी साहित्यिक आयोजन में सहभागी का और कभी निजी आत्मीयता का।

पैंतालीस वर्ष बहुत लंबा समय होता है। इस अवधि में शहर बदलते हैं, नौकरियां बदलती हैं, पत्रिकाएं बंद होती हैं, साहित्यिक प्रवृत्तियां बदलती हैं, लेखक आते-जाते हैं और स्वयं व्यक्ति भी अपनी पुरानी स्मृतियों के भीतर बदलता रहता है। लेकिन कुछ संबंध समय के साथ समाप्त नहीं होते; वे समय की परतों में दबकर और गहरे हो जाते हैं। ज्ञानरंजन के साथ मेरा संबंध मेरे लिए ऐसा ही रहा है।

ज्ञानरंजन को याद करना इसलिए केवल एक लेखक या संपादक को याद करना नहीं है। यह उस साहित्यिक संस्कृति को याद करना भी है जिसमें एक अनजान लेखक का पत्र पढ़ा जाता था, उसका उत्तर दिया जाता था, उसे पत्रिका भेजी जाती थी और धीरे-धीरे एक संवाद संबंध में बदल जाता था। शायद साहित्य की असली ताकत इसी में है—वह अपने बड़े इतिहासों के साथ-साथ ऐसे छोटे, आत्मीय और अनौपचारिक संबंधों में भी अपना समय सुरक्षित रखता है। ज्ञानरंजन मेरे लिए उसी सुरक्षित समय का महत्वपूर्ण नाम हैं। ■

Published Date 23 August, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

# व्यवस्था परिवर्तन का संकल्प साकार होने से हर वर्ग के जीवन में आ रहा सुखद बदलाव



**ठाकुर सुखविन्द्र सिंह सुक्खू**
मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश

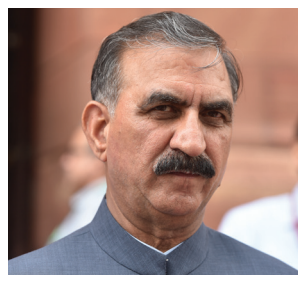

स्वतंत्रता दिवस के पावन अवसर पर समस्त प्रदेशवासियों को मेरी और प्रदेश सरकार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं। 15 अगस्त का यह पावन दिवस समस्त देशवासियों के लिए एक उल्लास का पर्व है। यह अवसर उन महान स्वतंत्रता सेनानियों और विभूतियों को स्मरण करने का भी है, जिन्होंने इस देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

देवभूमि हिमाचल को वीरभूमि के रूप में भी जाना जाता है। हमारे प्रदेश के लोगों ने देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए हमेशा सर्वोच्च बलिदान दिया है। कम आबादी के बावजूद हमारे प्रदेश के जवान भारी संख्या में सैन्य बलों में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। हमारे प्रदेश के वीर नायकों को चार परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया है। देश का पहला परमवीर चक्र भी कांगड़ा जिले के मेजर सोमनाथ शर्मा को प्रदान किया गया था। उनके अलावा कैप्टन विक्रम बतरा, मानद कप्तान संजय कुमार और लैफ्टिनेंट कर्नल धनसिंह थापा को भी परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

हिमाचल प्रदेश की वर्तमान कांग्रेस सरकार ने तीन वर्ष और आठ महीने का कार्यकाल पूरा कर लिया है। इस अवधि में हमारी सरकार ने प्रदेश के सभी वर्गों तथा सभी क्षेत्रों का अभूतपूर्व विकास किया है। सत्ता संभालते ही हमने 'व्यवस्था परिवर्तन' का नारा दिया था और इस संकल्प को धरातल पर साकार किया है। हमारी योजनाओं का लाभ जरूरतमंद लोगों तक पहुंच रहा है और उनका जीवन बदल रहा है।

हमारी सरकार ने वर्ष 2032 तक हिमाचल प्रदेश को देश का सबसे अमीर राज्य बनाने का लक्ष्य रखा है। आर्थिक संकट की चुनौती को पार करते हुए अब हम आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं। वर्ष 2022-23 में प्रदेश की प्रति व्यक्ति आय 2,14,952 रुपये थी जो 2025-26 में बढ़ाकर 2,83,626 रुपये हो गई है।

प्रदेश की आर्थिक स्थिति को मजबूती देने और प्रदेश के हितों की रक्षा के लिए हम हर मंच पर लड़ाई लड़ रहे हैं। प्रदेश के इतिहास में पहली बार अदालत के माध्यम से जीती लड़ाईयों से प्रदेश को अपने हक वापिस मिलने शुरू हुए हैं। कड़छम-वांगतू परियोजना में मुफ्त बिजली के रूप में हमारा हिस्सा 12 से बढ़कर 18 प्रतिशत हो गया है जिससे हर साल 150 करोड़ रुपये की अतिरिक्त आय हो रही है जबकि पूर्व सरकार ने डेढ़ साल तक हाई कोर्ट के फैसले को चुनौती ही नहीं दी। इसी तरह, वाइल्ड फ्लावर हॉल होटल का मालिकाना हक वापिस मिलने से प्रदेश के खजाने में 450 करोड़ रुपये आए हैं। इस फैसले से प्रदेश को हर साल 20 करोड़ रुपये की आय होगी।

हमारी सरकार ने किशाऊ बांध परियोजना में भी बड़ी सफलता हासिल की है जिसमें बिजली के रूप में हर साल प्रदेश को 100 करोड़ यूनिट बिजली और लगभग 600 करोड़ रुपये की सालाना आमदनी होगी। पिछली भाजपा सरकार ने इस मामले में प्रदेश के हितों के साथ समझौता किया था। अगर मैं इस मामले में सख्त रुख नहीं अपनाता तो राज्य पर 800 करोड़ रुपये का बोझ पड़ता।

हम शानन विद्युत परियोजना को फिर प्राप्त करने के प्रयास कर रहे हैं। भाखड़ा ब्यास प्रबंधन बोर्ड से हिमाचल प्रदेश के लंबित 7200 करोड़ रुपये के बकाये की वसूली के लिए भी लड़ाई जारी है। चंडीगढ़ में प्रदेश के 7.19 प्रतिशत हिस्से के लिए भी हमने आवाज़ उठाई है। मैं प्रदेश के लोगों को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कांग्रेस सरकार कभी भी उनके हितों के साथ खिलवाड़ नहीं होने देगी और हम लोगों के हितों के साथ कोई समझौता नहीं करेंगे।

हमने भ्रष्टाचार के खिलाफ जीरो टॉलरेंस की नीति अपनाते हुए सभी चोर दरवाजों को बंद करने का प्रयास किया है जहां से प्रदेश की सम्पदा को लूटा जाता रहा। हमारी सरकार के साढ़े तीन साल के कार्यकाल में भ्रष्टाचार का एक भी मामला सामने नहीं आया है। हम साफ नीयत से प्रदेश के विकास और जन कल्याण के लिए पूरे समर्पण के साथ काम कर रहे हैं। वहीं, दूसरी ओर, पिछली भाजपा सरकार में भ्रष्टाचार का बोलबाला था जिसकी परतें धीरे-धीरे खुल रहीं हैं। हमारी सरकार का साफ संदेश है कि कोई भी भ्रष्टाचारी बच नहीं पाएगा और दोषियों के खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई की जाएगी।

हमने जब सत्ता संभाली तो प्रदेश पर 76 हजार 700 करोड़ रुपये का कर्ज था। प्रदेश सरकार के कर्मचारियों की 10 हजार करोड़ की देनदारियां भी पिछली भाजपा सरकार छोड़कर गई। हमने प्रदेश के संसाधनों को बढ़ाया और हिमाचल को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में कदम उठाए। 16वें वित्त आयोग ने वर्ष 1952 से प्रदेश को मिल रहे 8 से 10 हजार करोड़ रुपये के राजस्व घाटा अनुदान को भी बंद कर दिया लेकिन प्रदेश इस वित्तीय संकट से बाहर आ चुका है और आत्मनिर्भरता की राह पर आगे बढ़ रहा है।

प्रदेश के इतिहास में पहली बार गाय के दूध का खरीद मूल्य 61 रुपये प्रति लीटर और भैंस के दूध का मूल्य 71 रुपये प्रति लीटर किया गया है। कांगड़ा जिले के ढगवार में प्रदेश का पहला स्वचालित मिल्क प्लांट 250 करोड़ रुपये की लागत से इस साल दिसम्बर में काम करना शुरू कर देगा जहां प्रति दिन डेढ़ लाख लीटर दूध की प्रोसेसिंग शुरू होने से हजारों दूध उत्पादकों को लाभ होगा।

हमारी सरकार ने नए होम-स्टे बनाने के लिए ब्याज पर सब्सिडी योजना आरम्भ की है। नए होम-स्टे और मौजूदा होम-स्टे में सुधार के लिए 5 करोड़ रुपये के निवेश तक शहरी क्षेत्रों में 3 प्रतिशत, ग्रामीण क्षेत्रों में 4 प्रतिशत तथा जनजातीय क्षेत्रों में 5 प्रतिशत ब्याज सब्सिडी दी जा रही है।

प्रदेश सरकार ने प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए राजीव गांधी प्राकृतिक खेती स्टार्ट-अप योजना शुरू की है। प्राकृतिक खेती से उगाए गेहूं पर समर्थन मूल्य बढ़ाकर 80 रुपये किया है। वहीं, मक्की का समर्थन मूल्य 50 रुपये और कच्ची हल्दी का समर्थन मूल्य 150 रुपये प्रति किलोग्राम किया गया है। पांगी को राज्य का पहला प्राकृतिक खेती उप-मंडल घोषित कर वहां के जौ को 80 रुपये समर्थन मूल्य दिया है। बड़ा भंगाल को भी हमने प्राकृतिक पंचायत का दर्जा दिया है। पहली बार अदरक के लिए 30 रुपये प्रति किलोग्राम का समर्थन मूल्य घोषित किया गया है।

राजीव गांधी स्वरोजगार स्टार्ट-अप योजना के चौथे चरण के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में बस सेवाएं बढ़ाने के लिए डीजल बसों की खरीद पर 30 प्रतिशत और इलेक्ट्रिक बसों पर 50 प्रतिशत सब्सिडी देने का निर्णय लिया गया है। इससे लोगों को बेहतर परिवहन सुविधाएं मिलेंगी और युवाओं को स्वरोजगार के अवसर प्राप्त होंगे।

हम प्रदेश के अति निर्धन लोगों के लिए अपना परिवार-सुखी परिवार योजना शुरू करने जा रहे हैं। हमने अति गरीब परिवारों का चयन करवाया जिसमें 85 हजार परिवार ऐसे निकले जो कभी बीपीएल में आए ही नहीं और न ही किसी सरकारी योजना का लाभ मिला है। अब तक 1.80 लाख अति निर्धन परिवार चिन्हित किए गए हैं जिनमें 2.50 लाख महिलाओं की आयु 21 वर्ष से अधिक है। हम इन सभी महिलाओं को इन्दिरा गांधी प्यारी बहना सुख सम्मान निधि योजना के अंतर्गत 1500 रुपये प्रतिमाह की सम्मान राशि देंगे, चाहे एक परिवार में तीन पात्र महिलाएं भी क्यों न हों। इन परिवारों को हर महीने 300 यूनिट मुफ्त बिजली और जिनके पास पक्के मकान नहीं हैं, उन्हें पक्के मकान बनाने के लिए आर्थिक मदद भी दी जाएगी।

मछुआरों के लिए जलाशयों में मछली पर रॉयल्टी को घटाकर एक प्रतिशत किया गया है। मुख्यमंत्री मछुआरा सम्मान निधि योजना शुरू कर मछली पकड़ने पर प्रतिबंध के दौरान मछुआरों को हर साल 3,500 रुपये की वित्तीय सहायता दी रही है।

हमारा राज्य देश की पहली बागवानी नीति लागू करने जा रहा है, जिससे लगभग 82,200 लोगों को रोज़गार मिलने की संभावना है। सेब के लिए यूनिवर्सल कार्टन ज़रूरी बनाए जाने से हज़ारों बागवानों को बेहतर दाम मिलने शुरू हुए हैं और उनका शोषण बंद हुआ है।

सेब उत्पादकों को लाभ पहुंचाने के लिए शिमला जिला में पराला और ढली मंडी, धर्मशाला की पासू मंडी जैसे प्रमुख परिसरों का विकास किया जा रहा है। सेब उत्पादकों को लाभ देने के लिए छैला-नेरीपुल-यशवंतनगर-कुमारहट्टी सड़क के सुधार के लिए 203.52 करोड़ 52 लाख रुपये और टिक्कर-जरोल-गाहन-ननखड़ी-खमाडी सड़क को स्तरोन्नत करने के लिए 35 करोड़ 93 लाख रुपये स्वीकृत किए गए हैं।

हमारे बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले, यह सरकार की प्राथमिकता है। हमारी सरकार इस क्षेत्र में व्यवस्था परिवर्तन कर रही है जिसके कारण प्रदेश ने शत-प्रतिशत साक्षरता हासिल की है। हमारे प्रयासों से प्रदेश आज गुणात्मक शिक्षा के मामले में देश में 5वें स्थान पर पहुंच गया है जबकि 2021 में भाजपा सरकार के कार्यकाल में राज्य 21वें स्थान पर था। प्रदेश में पहली बार अच्छी शिक्षा के लिए घर के नजदीक सीबीएसई स्कूल शुरू करने की पहल की गई है। प्रदेश के 156 सरकारी स्कूलों में सीबीएसई पैटर्न लागू किया गया है जिससे सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या बढ़ी है। अब तक 24 हज़ार से अधिक बच्चों ने प्राइवेट स्कूलों को छोड़कर सीबीएसई स्कूलों में दाखिला लिया है। इन स्कूलों में प्रदेश सरकार केवल 2 हज़ार रुपये फीस ले रही है जबकि प्राइवेट स्कूलों में 50 हज़ार रुपये से अधिक फीस वसूली जाती है।

हमने सरकारी स्कूलों में पहली कक्षा से अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाई शुरू की है ताकि इनमें पढ़ने वाले बच्चे भी भविष्य की चुनौतियों से निपटने के काबिल बन सकें। हमीरपुर में प्रदेश का पहला साईंस कॉलेज और अलाइड एण्ड हेल्थकेयर कॉलेज भी खोला जाएगा।

हमारी सरकार ने डॉ. वाई.एस. परमार विद्यार्थी ऋण योजना के अंतर्गत देश-विदेश में उच्च शिक्षा के लिए सिर्फ एक प्रतिशत ब्याज दर पर 20 लाख रुपये तक के ऋण का प्रावधान किया है। योजना का लाभ लेने के लिए परिवारिक आय सीमा 4 लाख से बढ़ाकर 12 लाख रुपये की गई है।

प्रदेश के इतिहास में पहली बार सरकारी स्कूलों के बच्चे विदेश में शैक्षणिक भ्रमण पर भेजे जा रहे हैं। 200 शिक्षकों को भी एक्पोजर विजिट पर विदेश भेजा गया ताकि दुनिया की श्रेष्ठ प्रणालियां हिमाचल में लागू की जा सकें।

इंदिरा गांधी सुख शिक्षा योजना के अंतर्गत विधवाओं और विकलांग माता-पिता के 18 वर्ष तक की आयु के पात्र बच्चों को एक हज़ार रुपये हर महीने दिए जा रहे हैं। 18 से 27 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्रदेश और बाहरी राज्यों के सरकारी शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के बाद शिक्षा पर होने वाला खर्च राज्य सरकार उठा रही है। शिक्षा विभाग में विभिन्न श्रेणियों के 7475 पद भरे गए हैं। जेबीटी के 1700 पद भरे जा रहे हैं। सीबीएसई स्कूलों में विभिन्न श्रेणियों के लगभग 3000 पदों को भरा हैं।

मरीजों को विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाएं देने और आधुनिक मशीनें उपलब्ध करवाने के लिए हमारी सरकार ने ऐतिहासिक कदम उठाए हैं। प्रदेश में पहली बार रोबोटिक सर्जरी की सुविधा शुरू हुई है। आईजीएमसी शिमला, टांडा और नेरचौक मेडिकल कॉलेज के साथ-साथ चमियाना अस्पताल में यह सुविधा आरम्भ की गई है जो स्वास्थ्य क्षेत्र में एक क्रांतिकारी पहल है। प्राइवेट अस्पतालों में रोबोटिक सर्जरी का खर्च 5 लाख रुपये से ज्यादा आता है जबकि हम प्रदेश में 30 से 80 हज़ार रुपये में यह सुविधा दे रहे हैं। आईजीएमसी शिमला में पैट स्कैन की सुविधा शुरू हो गई है जिससे कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों की जांच के लिए मरीजों को बाहरी राज्यों में नहीं जाना पड़ेगा। टांडा और हमीरपुर चिकित्सा महाविद्यालय में पैट स्कैन मशीनों की खरीद के लिए टेंडर किए जा चुके हैं।

चमियाना अस्पताल, आईजीएमसी शिमला और टांडा मेडिकल कॉलेज में आधुनिक स्वचालित प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए 75 करोड़ रुपये जारी किए गए हैं। आधुनिक चिकित्सा मशीनरी और उपकरणों की खरीद पर लगभग 3 हज़ार करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं।

डॉक्टरों, पैरामेडिकल स्टाफ और तकनीशियनों की कमी दूर करने के लिए भर्ती प्रक्रिया लगातार जारी है। पिछले साढ़े तीन सालों में मेडिकल ऑफिसर्ज के 398 पद भरे हैं और 346 पदों को भरने की प्रक्रिया जारी है। स्टाफ न्रर्सों के 468 पद भरे जा चुके हैं और 200 अन्य पद जल्दी भरे जाएंगे। सहायक स्टाफ नर्सों के 748 पद भरे गए हैं तथा 530 पद भरे जा रहे हैं। पैरा मेडिकल स्टाफ के 326 पद भरे जा चुके हैं और 407 पद भरने की प्रक्रिया चल रही है। स्वास्थ्य सेवाओं की मज़बूती के लिए विशेषज्ञ चिकित्सक उपलब्ध हों, इस सोच के साथ 330 पीजी सीटें बढ़ाने का फैसला किया गया है।

प्रदेश के गरीब परिवारों को बेहतरीन उपचार सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से हमारी सरकार नई स्वास्थ्य बीमा नीति ला रही है जिसके अंतर्गत गरीब परिवारों को 10 लाख रुपये तक का स्वास्थ्य बीमा प्रदान किया जाएगा। यह सुविधा बहुत ही कम प्रीमियम पर उपलब्ध होगी।

नए जंगल तैयार करने, मौजूदा वनों को बचाने और पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए हम विशेष कदम उठा रहे हैं। हमने 'मिशन 32 प्रतिशत' की शुरुआत कर वर्ष 2030 तक राज्य के वन क्षेत्र को 29.5 प्रतिशत से 32 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा है। जंगल लगाने और जंगल बचाने में लोगों की भागीदारी बढ़ाने के लिए हमने राजीव गांधी वन संवर्धन योजना शुरू की है। योजना के अंतर्गत पौधे लगाने और देखभाल करने वाले महिला मण्डलों और युवक मण्डलों को 1.20 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर की आर्थिक सहायता दी जा रही है।

सुशासन की दिशा में हमने प्रदेश में पहली बार तहसील और उप-तहसील स्तर पर विशेष राजस्व लोक अदालतों का आयोजन कर लोगों के कई सालों से लंबित मामलों का निपटारा किया है। इंतकाल के 5.44 लाख, तकसीम के 36,870, निशानदेही के 63 हज़ार और दुरुस्ती के 19,890 मामलों का समाधान किया जा चुका है।

'सरकार गांव के द्वार' कार्यक्रम के माध्यम से हमारी सरकार गांवों की समस्याओं को करीब से समझने और उनका समाधान करने के लिए गांवों तक पहुंच रही है। मैंने खुद प्रदेश के दुर्गम इलाकों जैसे बड़ा भंगाल, डोडरा क्वार, कुपवी, बागा-सराहन और सरची जैसे क्षेत्रों में रात्रि प्रवास किया। मेरे मंत्रिमंडल के सहयोगी भी गांव-गांव जाकर लोगों से सीधे संवाद कर रहे हैं। लोगों से मिल रहे सुझावों और उनकी समस्याओं को हमारी सरकार अपनी नीतियों और योजनाओं का आधार बना रही है।

पिछले तीन वर्षों में सामाजिक सुरक्षा पेंशन के 99 हज़ार 799 नए मामले मंजूर किए गए हैं। 1050 से 1100 रुपये तक की मासिक पेंशन प्राप्त कर रहीं 59 वर्ष तक की 2.67 लाख महिलाओं को अब हर महीने 1,500 रुपये प्रदान किए जा रहे हैं। सौ प्रतिशत दिव्यांगता वाले व्यक्तियों के लिए सामाजिक सुरक्षा पेंशन 1700 रुपये से बढ़ाकर 3 हज़ार रुपये प्रतिमाह की गई है।

समाज के सबसे संवेदनशील और वंचित वर्गों, विशेषकर बेसहारा बच्चों के लिए मुख्यमंत्री सुख-आश्रय योजना आरम्भ की गई है। इसके लिए देश का पहला कानून हमारी सरकार ने बनाया है। इसके अंतर्गत 27 वर्ष तक के 6 हज़ार बेसहारा बच्चों को 'चिल्ड्रन ऑफ दि स्टेट' के रूप में अपनाया गया है। इन बच्चों की शिक्षा और देखभाल का पूरा खर्च प्रदेश सरकार उठा रही है। अपना स्टार्ट-अप शुरू करने के लिए उन्हें दो लाख रुपये तक की वित्तीय सहायता का प्रावधान किया गया है। चिल्ड्रन ऑफ द स्टेट को देश के विभिन्न स्थानों पर एक्सपोजर विजिट पर भी भेजा जा रहा है ताकि उनका सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो सके।

पर्यटन हमारे प्रदेश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। इसलिए प्रदेश की आमदनी बढ़ाने और लोगों को रोज़गार के अवसर देने के उद्देश्य से हमारी सरकार ने पर्यटन क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए कई प्रभावी कदम उठाए हैं। कांगड़ा ज़िला को हिमाचल की पर्यटन राजधानी के रूप में विकसित किया जा रहा है। कांगड़ा हवाई अड्डे के विस्तार के लिए भूमि अधिग्रहण का कार्य शुरू किया जा चुका है। इसके लिए प्रभावित लोगों को 2400 करोड़ रुपये का उचित मुआवजा दिया गया है। धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए मंडी जिले में माता बगलामुखी रोपवे लोगों को समर्पित किया गया है जबकि चिंतपूर्णी मंदिर और बाबा बालकनाथ मंदिर के लिए रोपवे का निर्माण कार्य जारी है। प्रदेश में सभी जिला मुख्यालयों के साथ-साथ कुल 16 हेलीपोर्ट का निर्माण और विकास कार्य प्रगति पर है।

राज्य सरकार ने आय में वृद्धि और युवाओं को रोज़गार के अवसर प्रदान करने के लिए औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की है। प्रदेश में निवेश आकर्षित करने के लिए हम जल्दी ही अपनी नई उद्योग नीति ला रहे हैं। नई नीति में उद्योगों को प्रोत्साहन पैकेज दिया जाएगा।

हिमाचल प्रदेश को हरित ऊर्जा राज्य बनाने के लिए हमारी सरकार गंभीरता के साथ कार्य कर रही है। जलविद्युत क्षेत्र में छोटी परियोजनाओं को विकसित करने, सौर ऊर्जा परियोजनाओं और गैर-परम्परागत ऊर्जा आधारित निवेश को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है।

राज्य सरकार ने ग्रीन पंचायत कार्यक्रम शुरू किया है, जिसमें सभी पंचायतों में 500 किलोवाट की ग्राउंड माउंटेड सौर ऊर्जा परियोजनाएं लगाई जा रही हैं। इन परियोजनाओं से होने वाली आय का 25 प्रतिशत हिस्सा संबंधित ग्राम पंचायत के अनाथ बच्चों और विधवाओं के कल्याण के लिए खर्च किया जाएगा।

राज्य सरकार हर नागरिक को साफ पानी उपलब्ध करवाने के लिए काम कर रही है। सभी विधानसभा क्षेत्रों में साफ पानी की सुविधा सुनिश्चित करने के लिए 2,000 करोड़ रुपये की योजना तैयार की जा रही है। मौजूदा जल बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने, उसका पुनर्निर्माण करने और भूजल को रिचार्ज करने के लिए अनेक योजनाएं लागू की गई हैं।

हम बस यात्रियों को सुरक्षित और आरामदायक यात्रा की सुविधा प्रदान करने के साथ-साथ प्रदेश के पर्यावरण संरक्षण के लिए भी लगातार प्रयासरत हैं। हमारे कदम ई-वाहनों की दिशा में बढ़े हैं। प्रदेश में ई-बसों की संख्या बढ़कर 507 हो चुकी है। हम परिवहन निगम के पूरे बेड़े को इलेक्ट्रिक और हाईड्रोजन बसों में बदलने पर काम कर रहे हैं।

प्रदेश सरकार पूर्व सैनिकों और उनके आश्रितों के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है और उन्हें मिलने वाली अनुग्रह राशि में बड़े पैमाने पर वृद्धि की गई है। खेल प्रतिभाओं को निखारने के लिए हमने विभिन्न अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के पदक विजेताओं के लिए पुरस्कार राशि में भी वृद्धि की है।

वन मित्रों के 2061 पद भरे गए हैं। मंत्रिमंडल की हाल ही में विभिन्न विभागों में अलग-अलग श्रेणियों के 7,500 पद भरने को मंजूरी दी है। पुलिस विभाग में 1088 कांस्टेबलों की भर्ती की गई है। कांस्टेबल के 734 और पद भरे जाएंगे जिसके लिए उम्मीदवारों को अधिकतम आयु सीमा में एक वर्ष की एकमुश्त छूट मिलेगी। सभी पंचायतों में मल्टी टास्क वर्कर के 400 पद, शिक्षा विभाग में जूनियर आफिस असिस्टेंट (लाइब्रेरी) के 200 पद, जिला परिषदों के अधीन ग्राम पंचायतों के लिए जॉब ट्रेनी टेक्निकल असिस्टेंट के 280 पद भरे जाएंगे। 1,975 राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में एक-एक चौकीदार तथा एक-एक मल्टी टास्क वर्कर सहित 3,950 कर्मियों की नियुक्ति की जाएगी।

प्रदेश के विकास में सरकारी कर्मचारियों और पेंशनरों का बहुमूल्य योगदान है और हमारी सरकार उनके हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। हमने एनपीएस कर्मचारियों को ओपीएस दी और अन्य लाभ भी दिए जा रहे हैं।

युवाओं में नशे के बढ़ते प्रचलन पर अंकुश लगाने के लिए जन सहयोग से हमारी सरकार ने 'चिट्टा-मुक्त हिमाचल अभियान' शुरू किया है। जल्द ही 'खेलो हिमाचल चिट्टा-मुक्त अभियान' शुरू किया जाएगा जिसके माध्यम से युवाओं को खेलों और स्वस्थ जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित करेंगे। हमने चिट्टा माफिया की पंचायत स्तर तक मैपिंग की है। हमने पीआईटी एनडीपीएस अधिनियम लागू कर 205 ड्रग माफिया को हिरासत में लिया है। 400 मामलों में नशा माफिया की वित्तीय जांच की जा रही है। नशे की काली कमाई से अर्जित 20 सम्पतियों को गिराया गया है।

मैं आप सभी को विश्वास दिलाता हूं कि आपकी आशाओं और अपेक्षाओं के मुताबिक हमारी सरकार राज्य के हरेक क्षेत्र के विकास और समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है।

अंत में, मैं एक बार फिर आप सभी को स्वतंत्रता दिवस की बधाई देता हूं तथा समस्त प्रदेशवासियों के सुखमय और स्वस्थ जीवन की कामना करता हूं।

**जय हिंद, जय हिमाचल।**

## सभी प्रदेशवासियों को स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं

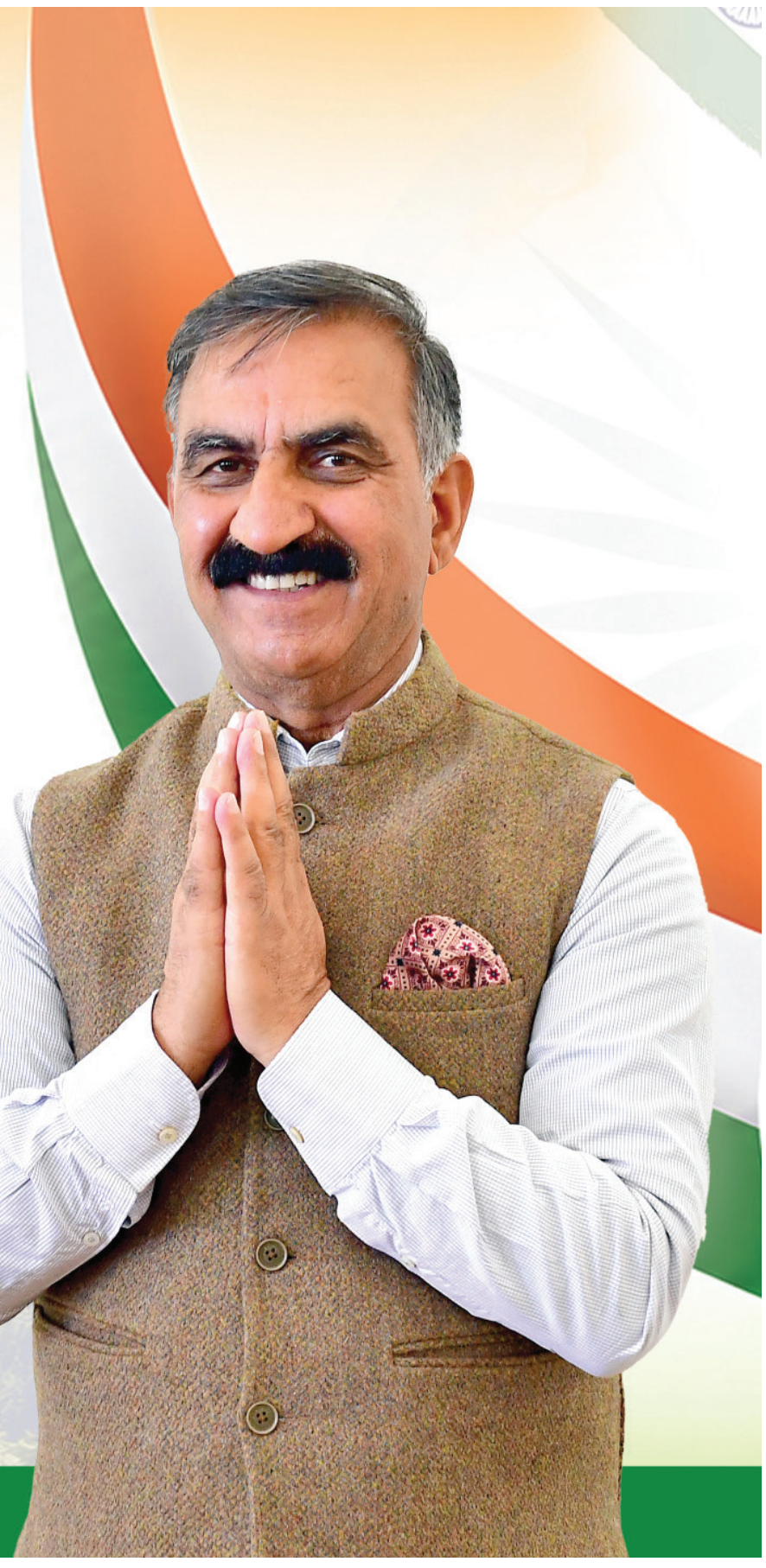



स्वतंत्रता दिवस राष्ट्र के गौरव, स्वाभिमान और अमर बलिदानों के स्मरण का प्रेरणादायी पर्व है। हम अपने महापुरुषों से राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा लेकर प्रदेश के विकास, समृद्धि एवं खुशहाली के लिए मिलकर कार्य करें तथा हिमाचल के हित को सर्वोपरि रखें।

जय हिंद, जय हिमाचल

**सुखविन्द्र सिंह सुक्खू**
मुख्यमंत्री, हिमाचल प्रदेश

**सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश**

R.O. 0038/2026-2027(Display)